क्षितिज

भाग 2

कक्षा 10 'अ' पाठ्यक्रम के लिए
हिंदी की पाठ्यपुस्तक

f{kfrt

भाग 2

कक्षा 10 'अ' पाठ्यक्रम के लिए
हिंदी की पाठ्यपुस्तक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 81-7450-656-X

प्रथम संस्करण
जनवरी 2007 माघ 1928
पुनर्मुद्रण
नवंबर 2007 कार्तिक 1929
फरवरी 2009 माघ 1930

PD 75T NSY

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2007

रु. 40.00

एन.सी.ई.आर.टी वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा अनेजा प्रिंटर्स, सी-11, सैक्टर-10, नोएडा 201301 द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग : *पेय्येटि राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी : *शिव कुमार*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार अधिकारी : *गौतम गांगुली*
संपादक : *नरेश यादव*
उत्पादन सहायक : *ओम प्रकाश*

आवरण एवं चित्र
अरविंदर चावला

छविचित्र
निधि वाधवा

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास हैं। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और

गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस, और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् भाषा सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रो. नामवर सिंह और इस पुस्तक के मुख्य सलाहकार प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया; इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 नवंबर 2006

यह पुस्तक

दसवीं कक्षा के लिए हिंदी के 'अ' पाठ्यक्रम की पाठ्यपुस्तक **क्षितिज** भाग 2 आपके सामने है। इस संकलन में सत्रह रचनाकारों की रचनाएँ शामिल हैं जिनमें आठ गद्य रचनाएँ और नौ कवियों की कविताएँ हैं। कविताओं को ऐतिहासिक कालक्रम के अनुसार रखा गया है। उद्देश्य यह रहा है कि भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल की विभिन्न प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले कवियों की कविताओं के माध्यम से विद्यार्थी हिंदी कविता की विकास-यात्रा से परिचित हो सकें।

विद्यार्थियों को हिंदी की प्रमुख गद्य विधाओं और शैलियों का परिचय कराने के लिए विचारात्मक और व्यंग्यात्मक निबंधों के साथ कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा आदि विधाओं को शामिल किया गया है। विधा के अतिरिक्त विषय, भाषा शैली की विविधता, सरसता और रोचकता का भी पूरा ध्यान रखा गया है। गद्य पाठों का संयोजन न तो काल क्रम से किया गया है और न ही विधावार बल्कि उनके समायोजन का मुख्य आधार है सरलता से कठिनता की ओर। प्रसिद्ध लेखकों के साथ कुछ नए लेखकों और शैलियों का समावेश इस उद्देश्य से किया गया है कि विद्यार्थियों को कुछ नयी पाठ्य-सामग्री पढ़ने को मिल सके। हमारा प्रयत्न रहा है कि हिंदी साहित्य की समृद्धि और शक्ति दोनों की एक झलक हमारे किशोर पाठकों को मिले।

पाठ्यपुस्तक पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम का मूर्त रूप होती है जिसमें पाठ्यक्रम के उद्देश्य बहुत बारीकी से पिरोए जाते हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में जिन बिंदुओं की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया गया है उन बिंदुओं को इस पाठ्यपुस्तक में रचनात्मक रूप से समाहित करने की कोशिश की गई है। शिक्षकों और विद्यार्थियों द्वारा पाठ्यपुस्तक के दक्षतापूर्ण उपयोग पर ही उसकी संपूर्णता निर्भर करती है। वर्तमान समय में शिक्षा का शास्त्र और व्यवहार विद्यार्थियों की सहभागिता को ही दक्षता का पर्याय मानता है इसलिए विद्यार्थियों को केंद्र में रखकर ही इस पुस्तक का ताना-बाना बुना गया है। अत: शिक्षकों द्वारा पाठ्यपुस्तक का दक्षतापूर्ण उपयोग भी तभी संभव है जब उनकी तमाम शिक्षण तकनीकों के केंद्र में विद्यार्थी हों। इस दृष्टि से शिक्षक की भूमिका किसी उपदेशक या एकतरफ़ा ज्ञान प्रदान करने वाले के रूप में नहीं हो सकती।

पाठ्यपुस्तक की सामग्री का रचनात्मक उपयोग करने के लिए उसे एक प्रेरक की भूमिका निभानी पड़ेगी। विद्यार्थियों के किशोर मानस को ध्यान में रखकर शिक्षक को अपने तमाम शिक्षण कार्य के दौरान भाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की चली आती परंपरागत पद्धतियों से आगे जाना पड़ेगा ताकि विद्यार्थी आधुनिक जीवन के परिवेश, समकालीन यथार्थ और दिन-प्रतिदिन के बदलते जीवन की चुनौतियों के बीच मानव मूल्यों के प्रति अडिग आस्था बनाए रखने की प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

पाठगत बाधाओं को दूर करते हुए विद्यार्थियों की सहभागिता को सही दिशा प्रदान करने का काम शिक्षक ही कर सकता है। शिक्षक पाठ पढ़ाने के साथ पुस्तक में निर्देशित शैक्षिक गतिविधियों को कराते हुए विद्यार्थियों की भाषिक कुशलताओं को बढ़ाता है और जीवन-जगत के संबंध में उनके अनुभव क्षेत्र का विस्तार करता है। विद्यार्थियों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर से जोड़ने का काम भी भाषा और साहित्य की शिक्षा ही करती है इसलिए भारत के बहुभाषी परिवेश को शिक्षक को अपनी शिक्षण पद्धति का हिस्सा बनाना होगा और उसे एक संसाधन के रूप में शामिल करना होगा। साझी संस्कृति, सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित समाज, बालिकाओं के प्रति पूर्वग्रह मुक्त दृष्टिकोण, शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण वर्ग और पर्यावरण एवं शांति जैसे संवेदनशील मुद्दे शिक्षकों से सकारात्मक व्यवहार की माँग करते हैं।

हम सभी जानते हैं कि शिक्षण की कोई एक विधि नहीं होती। हर शिक्षक अपने ढंग से पढ़ता-पढ़ाता है परंतु मौलिकता और सृजनात्मकता द्वारा शिक्षण को रुचिकर बनाया जा सकता है। सहायक सामग्री (संदर्भ से जुड़ी नयी पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, ऑडियो-वीडियो कैसेट, सीडी या चित्र आदि) का उपयोग करते हुए शिक्षण को एकरसता और यांत्रिकता से बचाया जा सकता है। शिक्षक अपने कक्षा अध्यापन को इस तरह व्यवस्थित करें कि विद्यार्थियों को भाषा शिक्षण के सभी कौशलों के विकास का समुचित अवसर मिले। साथ ही विद्यार्थियों के भीतर जो कल्पनाशीलता, विस्मय, कौतुहल, जिज्ञासा एवं सृजनात्मकता है उन्हें विकसित किया जा सके।

भाषा और साहित्य का शिक्षण उसकी अनेक विधाओं के माध्यम से होता है। कविता साहित्य के दूसरे रूपों की तुलना में सबसे पुरानी विधा है इसलिए पुस्तक में कविताएँ गद्य से पहले रखी गई हैं। कविता अपनी वाक्य संरचना, शब्दों की स्थिति एवं लय के कारण गद्य से भिन्न होती है। गद्य की भाषा हमारे दैनिक व्यवहार की भाषा के निकट होती है और उसमें विचार प्रधान होता है जबकि कविता की भाषा सामान्यत: संकेतात्मक होती है। उसमें छंद, लय, तुक, अलंकार, बिंब, प्रतीक आदि का विशेष महत्त्व होता है। हम कह सकते हैं कि कविता जीवन अनुभवों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। वह मनुष्य के भावजगत का विस्तार करती है। उसकी कल्पना शक्ति को जगाती है और सौंदर्यबोध का विकास करती है।

हम जानते हैं साहित्य की कोई अकेली समझ नहीं होती है और समझने-समझाने के कोई पूर्व निर्धारित उपाय भी नहीं होते। विशेष रूप से कविता का कथ्य साझेदारी के बिना पूरी तरह समझ में नहीं आ सकता। कविता का अर्थ खंडों में नहीं समग्र प्रभाव के रूप में ही ग्रहण किया जाता है। शिक्षण में यह भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि कविताओं का कोई एक निश्चित अर्थ नहीं होता है इसीलिए विद्यार्थियों को कल्पना करने की पूरी छूट देनी चाहिए।

सभी काल की कविताओं को एक ही पद्धति से नहीं पढ़ाया जा सकता। मध्यकालीन कविताओं में अलंकार, छंद विधान, तुक आदि के प्रति विशेष आग्रह रहा है जबकि आज की कविता में लय और प्रवाह का महत्त्व है, परंपरागत छंद और तुक आदि का नहीं। शिक्षकों को यह भी ध्यान में रखना होगा कि कवि की काव्य-संवेदना के निर्माण में उसके युग और परिवेश का हाथ होता है इसलिए कविता पढ़ाते समय कवि की युग चेतना का बोध और अपने समय के प्रति सजगता दोनों आवश्यक हैं। तभी आज के समय में उस कविता की प्रासंगिकता को ठीक से समझा जा सकता है।

कविता के आदर्श और सस्वर वाचन से कविता को समझने और उसके भावग्रहण में सहायता मिलती है। संभव हो तो विद्यार्थियों का रचनाकारों से साक्षात्कार कराया जाए। कवियों को बुलाकर उनके कविता पाठ का आयोजन भी किया जा सकता है। भक्तिकालीन कविताओं की संगीतात्मक प्रस्तुति के ऑडियो कैसेट या सीडी उपलब्ध हों तो उसे भी सुनवाएँ। समय-समय पर शैक्षणिक भ्रमण और यात्राओं का आयोजन भी किया जाना चाहिए।

गद्य विधाओं की भी अपनी विशेष संरचना होती है और प्रत्येक विधा को पढ़ने-पढ़ाने की विशिष्ट विधियाँ होती हैं। किसी विधा विशेष की रचना पढ़ाते समय उसकी मूल विशेषता की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए। उदाहरण के लिए निबंध शिक्षण में अर्थ ग्रहण की योग्यता विकसित करना और भाषा के अभिव्यक्ति कौशल से विद्यार्थियों को परिचित कराना अपेक्षित है। निबंध में लेखक के दृष्टिकोण का और उसकी भाषा-शैली का विशेष महत्त्व होता है। उसी प्रकार विद्यार्थियों की कल्पना, उत्सुकता एवं जिज्ञासा के विस्तार के लिए कहानी पढ़ाई जाती है। हम सभी जानते हैं कि एक कहानी में कई कहानियाँ छुपी रहती हैं। शिक्षकों को ऐसे मोड़ों या बिंदुओं को खोजना होगा जहाँ से कहानी किसी भी दिशा में जा सकती है। ऐसी स्थिति से आगे की कल्पना करने (लिखित या मौखिक) के लिए छात्र-छात्राओं को कहा जा सकता है। साथ ही कहानी के अंतर्गत कई दृश्य-चित्र एवं शिक्षण बिंदु होते हैं। शिक्षकों को इन दृश्य-चित्रों एवं शिक्षण बिंदुओं का अभ्यास कार्य द्वारा या किसी अन्य विधि से रचनात्मक उपयोग करना चाहिए, तभी कहानी वस्तु एवं शिल्प दोनों रूपों में विद्यार्थियों के ज्ञान का हिस्सा बन पाएगी। कहानी शिक्षण के दौरान शिक्षक प्रायोगिक रूप से कहानी को नाटक में परिवर्तित करने की प्रक्रिया का प्रारंभ भी कर सकते हैं। संस्मरण,

जीवनी और आत्मकथा द्वारा युग विशेष की परिस्थितियों के आकलन के साथ-साथ वैयक्तिक गुणों, क्षमताओं और अनुकूल या प्रतिकूल स्थितियों की चर्चा इस तरह की जाए कि विद्यार्थियों को उनके व्यक्तित्व के विकास में सहायता मिल सके। इस प्रकार विभिन्न साहित्यिक विधाओं के लक्षणों और विशेषताओं को जानकर उनके अध्ययन-अध्यापन को सुगम बनाया जा सकता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या सन् 2005 में ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ने की बात कही गई है। शिक्षा केवल पाठ्यपुस्तक केंद्रित ही न हो बल्कि उससे विद्यार्थी का चहुँमुखी विकास हो और रटंत प्रणाली से मुक्ति मिले। मूल्यांकन को सीखने की प्रक्रिया मानते हुए उसे कक्षा की गतिविधियों से जोड़ने की सिफ़ारिश भी की गई है। इन सब बातों को देखते हुए शिक्षक का दायित्व और बढ़ जाता है कि वह विद्यार्थियों की उपलब्धियों को किस प्रकार आँकता है। प्राय: यह देखा गया है कि शिक्षक प्रश्नों के उत्तर का एक ढाँचा निर्मित कर लेता है और उससे अलग प्रकार के उत्तर की अपेक्षा वह विद्यार्थियों से नहीं करता। भाषा और साहित्य के प्रश्न बँधे-बँधाए उत्तरों तक सीमित नहीं हो सकते, उनमें तर्क, खोजबीन और अपनी तरह से अर्थ ग्रहण करने की असीमित संभावनाएँ होती हैं। शिक्षक को उदारता दिखाते हुए विद्यार्थियों के उत्तर स्वीकार करने चाहिए। वह अवलोकन, समूह कार्य, वाचन, पठन, संवाद, मौखिक-लिखित अभिव्यक्ति आदि को मूल्यांकन की प्रक्रिया से जोड़े। प्रस्तुत पुस्तक के प्रश्न-अभ्यासों में स्मृति की क्षमता का परीक्षण करने वाले प्रश्नों को नकारा गया है। उनमें एक खुलापन है और चुनौती भी। अत: शिक्षकों से अपेक्षा रहेगी कि वे भी पूर्वग्रह से मुक्त होकर अपने शिक्षण में एक खुलापन लाएँ।

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली।

मुख्य सलाहकार

पुरुषोत्तम अग्रवाल, *प्रोफ़ेसर,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली।

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

सदस्य

अनिता वैष्णव, *पी.जी.टी.* (हिंदी), दिल्ली पब्लिक स्कूल, वसंत कुंज,नयी दिल्ली।

अनुराधा, *पी.जी.टी.* (हिंदी), सरदार पटेल विद्यालय, लोधी एस्टेट, नयी दिल्ली।

दिविक रमेश, *प्राचार्य,* मोतीलाल नेहरू कॉलेज, नयी दिल्ली।

दुर्गा प्रसाद गुप्ता, *रीडर,* हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नयी दिल्ली।

निरंजन देव, *प्राचार्य,* भारत-भारती स्कूल, ढालपुर, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश।

निरंजन सहाय, *प्रवक्ता* (हिंदी), पं. उदय जैन महाविद्यालय, कानोड़ ज़िला, उदयपुर।

माधवी कुमार, *रीडर,* सी.आई.ई.टी., एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

वीरेंद्र सिंह रावत, *फ़ील्ड ऑफ़िसर,* शिक्षा विभाग, केंद्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

शारदा कुमारी, *प्रवक्ता,* डाइट, आर.के.पुरम, नयी दिल्ली।

हिमांशु पंड्या, *प्रवक्ता* (हिंदी), भूपाल नोबल्स स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उदयपुर।

सदस्य समन्वयक

चन्द्रा सदायत, *रीडर,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में अकादमिक सहयोग के लिए परिषद् शंभुनाथ, *निदेशक,* केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा; कमल कुमार, *रीडर* (हिंदी), जीसस एंड मेरी कॉलेज, नयी दिल्ली; रामबक्ष, *प्रोफेसर* (हिंदी), इग्नू, नयी दिल्ली; नीलकंठ कुमार, *पी.जी.टी.* (हिंदी), राजकीय बाल विद्यालय न. 1, पालम गाँव की आभारी है।

परिषद् रचनाकारों, रचनाकारों के परिजनों, संस्थानों, प्रकाशकों के प्रति आभारी है जिन्होंने रचनाओं को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की।

पुस्तक निर्माण संबंधी कार्यों में तकनीकी सहयोग के लिए परिषद् *कंप्यूटर स्टेशन इंचार्ज* (भाषा विभाग) परशराम कौशिक; *डी.टी.पी. ऑपरेटर* सचिन कुमार; *कॉपी एडिटर* वरुणा मित्तल, अंजना बख्शी, अवध किशोर सिंह एवं प्रूफ रीडर *दुर्गा देवी* की आभारी है।

विषय-क्रम

आमुख *iii*
यह पुस्तक *v*

काव्य खंड

1. **सूरदास** **3**
ऊधौ, तुम हौ अति बड़भागी
मन की मन ही माँझ रही
हमारैं हरि हारिल की लकरी
हरि हैं राजनीति पढ़ि आए

2. **तुलसीदास** **10**
राम-लक्ष्मण-परशुराम संवाद

3. **देव** **19**
पाँयनि नूपुर...
डार द्रुम पलना...
फटिक सिलानि...

4. **जयशंकर प्रसाद** **26**
आत्मकथ्य

5. **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'** **31**
उत्साह
अट नहीं रही है

6. **नागार्जुन** **37**
यह दंतुरित मुसकान
फसल

7. **गिरिजाकुमार माथुर** **44**
छाया मत छूना

8. **ऋतुराज** **49**
कन्यादान

9. **मंगलेश डबराल** **52**
संगतकार

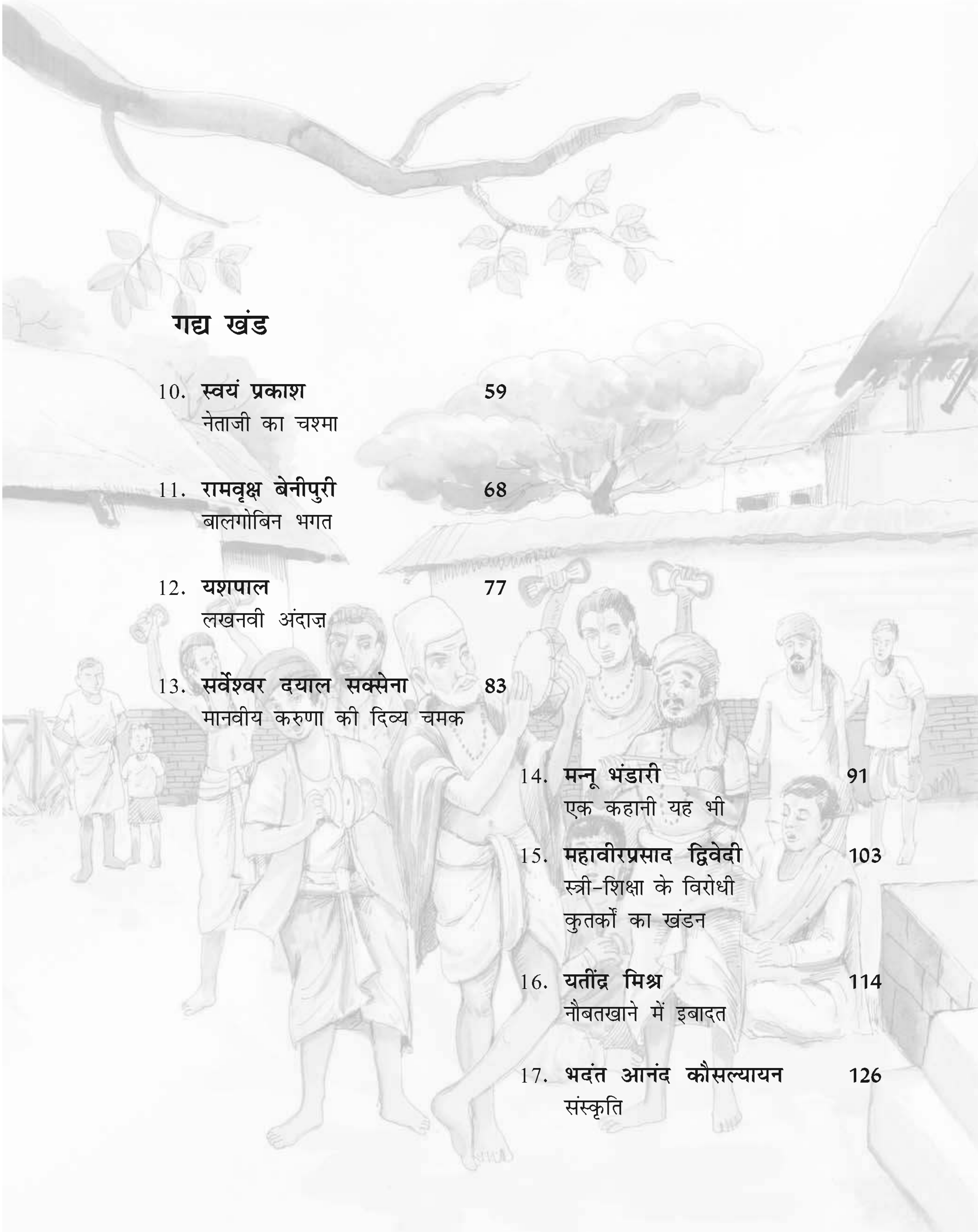

गद्य खंड

10. **स्वयं प्रकाश** — 59
नेताजी का चश्मा

11. **रामवृक्ष बेनीपुरी** — 68
बालगोबिन भगत

12. **यशपाल** — 77
लखनवी अंदाज़

13. **सर्वेश्वर दयाल सक्सेना** — 83
मानवीय करुणा की दिव्य चमक

14. **मन्नू भंडारी** — 91
एक कहानी यह भी

15. **महावीरप्रसाद द्विवेदी** — 103
स्त्री-शिक्षा के विरोधी कुतर्कों का खंडन

16. **यतींद्र मिश्र** — 114
नौबतखाने में इबादत

17. **भदंत आनंद कौसल्यायन** — 126
संस्कृति

काव्य खंड

हृदय सिंधु मति सीप समाना।
स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।
जो बरषइ बर बारि विचारू।
होंहि कवित मुक्तामनि चारू।।

– तुलसीदास

1857 जंग-ए-आज़ादी के शहीदों को सलाम

सन् 1857 के बागी सैनिकों का कौमी गीत

हम हैं इसके मालिक हिंदुस्तान हमारा
पाक वतन है कौम का जन्नत से भी प्यारा
ये है हमारी मिल्कियत हिंदुस्तान हमारा
इसकी रूहानियत से रोशन है जग सारा
कितनी कदीम कितना नईम, सब दुनिया से न्यारा
करती है जरखेज़ जिसे गंगो-जमुन की धारा
ऊपर बर्फ़ीला पर्वत पहरेदार हमारा
नीचे साहिल पर बजता, सागर का नक्कारा
इसकी खानें उगल रहीं सोना हीरा पारा
इसकी शान-शौकत का दुनिया में जयकारा
आया फिरंगी दूर से ऐसा मंतर मारा
लूटा दोनों हाथ से प्यारा वतन हमारा
आज शहीदों ने है तुमको अहले वतन ललकारा
तोड़ो गुलामी की ज़ंजीरें बरसाओ अंगारा
हिंदू मुसलमां सिख हमारा भाई भाई प्यारा
यह है आजादी का झंडा इसे सलाम हमारा।।

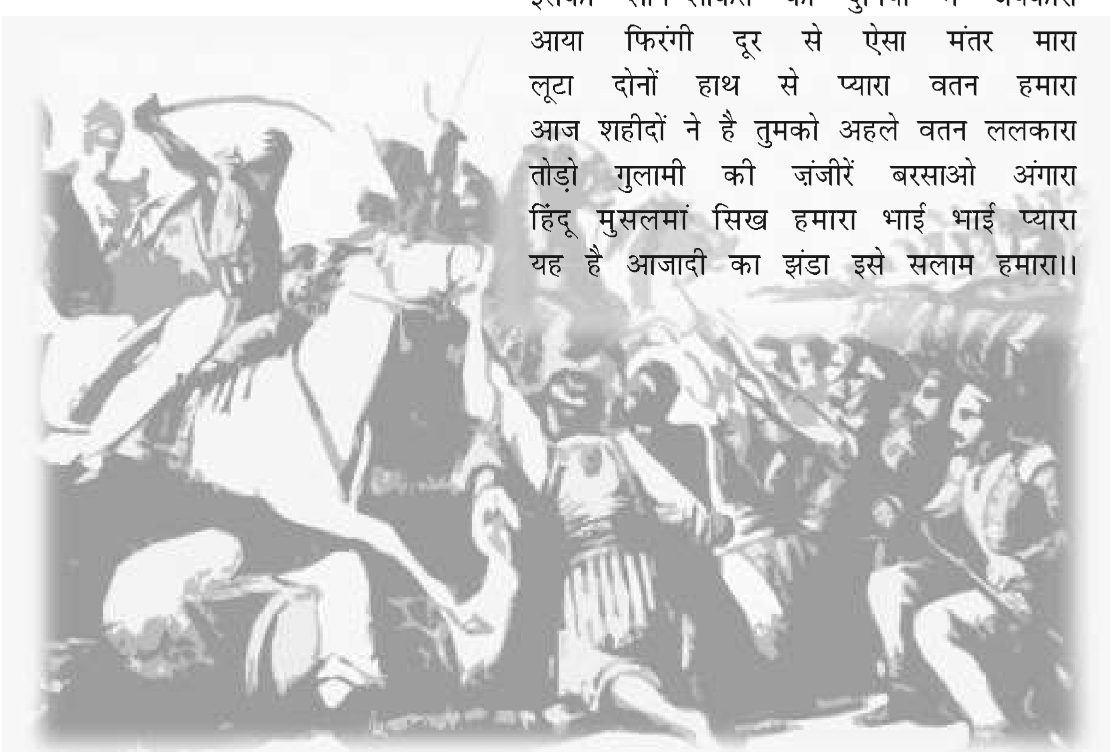

1

सूरदास

सूरदास का जन्म सन् 1478 में माना जाता है। एक मान्यता के अनुसार उनका जन्म मथुरा के निकट रुनकता या रेणुका क्षेत्र में हुआ जबकि दूसरी मान्यता के अनुसार उनका जन्म-स्थान दिल्ली के पास सीही माना जाता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य सूरदास अष्टछाप के कवियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। वे मथुरा और वृंदावन के बीच गऊघाट पर रहते थे और श्रीनाथ जी के मंदिर में भजन-कीर्तन करते थे। सन् 1583 में पारसौली में उनका निधन हुआ।

उनके तीन ग्रंथों **सूरसागर**, **साहित्य लहरी** और **सूर सारावली** में **सूरसागर** ही सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ। खेती और पशुपालन वाले भारतीय समाज का दैनिक अंतरंग चित्र और मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों का चित्रण सूर की कविता में मिलता है। सूर 'वात्सल्य' और 'शृंगार' के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। कृष्ण और गोपियों का प्रेम सहज मानवीय प्रेम की प्रतिष्ठा करता है। सूर ने मानव प्रेम की गौरवगाथा के माध्यम से सामान्य मनुष्यों को हीनता बोध से मुक्त किया, उनमें जीने की ललक पैदा की।

उनकी कविता में ब्रजभाषा का निखरा हुआ रूप है। वह चली आ रही लोकगीतों की परंपरा की ही श्रेष्ठ कड़ी है।

*यहाँ **सूरसागर** के **भ्रमरगीत** से चार पद लिए गए हैं। कृष्ण ने मथुरा जाने के बाद स्वयं न लौटकर उद्धव के जरिए गोपियों के पास संदेश भेजा था। उद्धव ने निर्गुण ब्रह्म एवं योग का उपदेश देकर गोपियों की विरह वेदना को शांत करने का प्रयास किया। गोपियाँ ज्ञान मार्ग की बजाय प्रेम मार्ग को पसंद करती थीं। इस कारण उन्हें उद्धव का शुष्क संदेश पसंद नहीं आया। तभी वहाँ एक भौंरा आ पहुँचा। यहीं से **भ्रमरगीत** का प्रारंभ होता है। गोपियों ने भ्रमर के बहाने उद्धव पर व्यंग्य बाण छोड़े। पहले पद में गोपियों की यह शिकायत वाजिब लगती है कि यदि उद्धव कभी स्नेह के धागे से बँधे होते तो वे विरह की वेदना को अनुभूत अवश्य कर पाते। दूसरे पद में गोपियों की यह स्वीकारोक्ति कि उनके मन की अभिलाषाएँ मन में ही रह गईं, कृष्ण के प्रति उनके प्रेम की गहराई को अभिव्यक्त करती है। तीसरे पद में वे उद्धव की योग साधना को कड़वी ककड़ी जैसा बताकर अपने एकनिष्ठ प्रेम में दृढ़ विश्वास प्रकट करती हैं। चौथे पद में उद्धव को ताना मारती हैं कि कृष्ण ने अब राजनीति पढ़ ली है। अंत में गोपियों द्वारा उद्धव को राजधर्म (प्रजा का हित) याद दिलाया जाना सूरदास की लोकधर्मिता को दर्शाता है।*

पद

(1)

ऊधौ, तुम हौ अति बड़भागी।
अपरस रहत सनेह तगा तैं, नाहिन मन अनुरागी।
पुरइनि पात रहत जल भीतर, ता रस देह न दागी।
ज्यौं जल माहँ तेल की गागरि, बूँद न ताकौं लागी।
प्रीति-नदी मैं पाउँ न बोर्‌यौ, दृष्टि न रूप परागी।
'सूरदास' अबला हम भोरी, गुर चाँटी ज्यौं पागी।।

(2)

मन की मन ही माँझ रही।
कहिए जाइ कौन पै ऊधौ, नाहीं परत कही।
अवधि अधार आस आवन की, तन मन बिथा सही।
अब इन जोग सँदेसनि सुनि-सुनि, बिरहिनि बिरह दही।
चाहति हुतीं गुहारि जितहिं तैं, उत तैं धार बही।
'सूरदास' अब धीर धरहिं क्यौं, मरजादा न लही।।

(3)

हमारैं हरि हारिल की लकरी।
मन क्रम बचन नंद-नंदन उर, यह दृढ़ करि पकरी।
जागत सोवत स्वप्न दिवस-निसि, कान्ह-कान्ह जक री।
सुनत जोग लागत है ऐसौ, ज्यौं करुई ककरी।
सु तौ ब्याधि हमकौं लै आए, देखी सुनी न करी।
यह तौ 'सूर' तिनहिं लै सौंपौ, जिनके मन चकरी।।

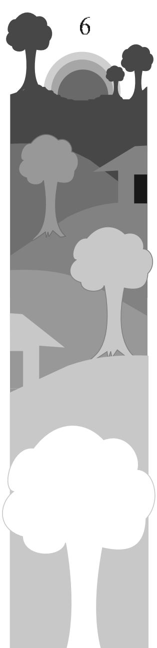

(4)

हरि हैं राजनीति पढ़ि आए।
समुझी बात कहत मधुकर के, समाचार सब पाए।
इक अति चतुर हुते पहिलैं ही, अब गुरु ग्रंथ पढ़ाए।
बढ़ी बुद्धि जानी जो उनकी, जोग-सँदेस पठाए।
ऊधौ भले लोग आगे के, पर हित डोलत धाए।
अब अपनै मन फेर पाइहैं, चलत जु हुते चुराए।
ते क्यौं अनीति करैं आपुन, जे और अनीति छुड़ाए।
राज धरम तौ यहै 'सूर', जो प्रजा न जाहिं सताए।।

प्रश्न-अभ्यास

1. गोपियों द्वारा उद्धव को भाग्यवान कहने में क्या व्यंग्य निहित है?
2. उद्धव के व्यवहार की तुलना किस-किस से की गई है?
3. गोपियों ने किन-किन उदाहरणों के माध्यम से उद्धव को उलाहने दिए हैं?
4. उद्धव द्वारा दिए गए योग के संदेश ने गोपियों की विरहाग्नि में घी का काम कैसे किया?
5. 'मरजादा न लही' के माध्यम से कौन-सी मर्यादा न रहने की बात की जा रही है?
6. कृष्ण के प्रति अपने अनन्य प्रेम को गोपियों ने किस प्रकार अभिव्यक्त किया है?
7. गोपियों ने उद्धव से योग की शिक्षा कैसे लोगों को देने की बात कही है?
8. प्रस्तुत पदों के आधार पर गोपियों का योग-साधना के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट करें।
9. गोपियों के अनुसार राजा का धर्म क्या होना चाहिए?
10. गोपियों को कृष्ण में ऐसे कौन-से परिवर्तन दिखाई दिए जिनके कारण वे अपना मन वापस पा लेने की बात कहती हैं?
11. गोपियों ने अपने वाक्चातुर्य के आधार पर ज्ञानी उद्धव को परास्त कर दिया, उनके वाक्चातुर्य की विशेषताएँ लिखिए?
12. संकलित पदों को ध्यान में रखते हुए सूर के भ्रमरगीत की मुख्य विशेषताएँ बताइए?

रचना और अभिव्यक्ति

13. गोपियों ने उद्धव के सामने तरह-तरह के तर्क दिए हैं, आप अपनी कल्पना से और तर्क दीजिए।
14. उद्धव ज्ञानी थे, नीति की बातें जानते थे; गोपियों के पास ऐसी कौन-सी शक्ति थी जो उनके वाक्चातुर्य में मुखरित हो उठी?
15. गोपियों ने यह क्यों कहा कि हरि अब राजनीति पढ़ आए हैं? क्या आपको गोपियों के इस कथन का विस्तार समकालीन राजनीति में नज़र आता है, स्पष्ट कीजिए।

पाठेतर सक्रियता

- प्रस्तुत पदों की सबसे बड़ी विशेषता है गोपियों की 'वाग्विदग्धता'। आपने ऐसे और चरित्रों के बारे में पढ़ा या सुना होगा जिन्होंने अपने वाक्चातुर्य के आधार पर अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई; जैसे–बीरबल, तेनालीराम, गोपालभाँड, मुल्ला नसीरुद्दीन आदि। अपने किसी मनपसंद चरित्र के कुछ किस्से संकलित कर एक अलबम तैयार करें।
- सूर रचित अपने प्रिय पदों को लय व ताल के साथ गाएँ।

शब्द-संपदा

बड़भागी	-	भाग्यवान
अपरस	-	अलिप्त, नीरस, अछूता
तगा	-	धागा, बंधन
पुरइनि पात	-	कमल का पत्ता
दागी	-	दाग, धब्बा
माहँ	-	में
प्रीति-नदी	-	प्रेम की नदी
पाउँ	-	पैर
बोर्‍यौ	-	डुबोया
परागी	-	मुग्ध होना
गुर चाँटी ज्यौं पागी	-	जिस प्रकार चींटी गुड़ में लिपटती है, उसी प्रकार हम भी कृष्ण के प्रेम में अनुरक्त हैं
अधार	-	आधार
आवन	-	आगमन
बिथा	-	व्यथा
बिरहिनि	-	वियोग में जीने वाली
बिरह दही	-	विरह की आग में जल रही हैं
हुतीं	-	थीं
गुहारि	-	रक्षा के लिए पुकारना
जितहिं तैं	-	जहाँ से
उत	-	उधर, वहाँ
धार	-	योग की प्रबल धारा
धीर	-	धैर्य
मरजादा	-	मर्यादा, प्रतिष्ठा
न लही	-	नहीं रही, नहीं रखी
हारिल	-	हारिल एक पक्षी है जो अपने पैरों में सदैव एक लकड़ी लिए रहता है, उसे छोड़ता नहीं है
नंद-नंदन उर...पकरी	-	नंद के नंदन कृष्ण को हमने भी अपने हृदय में बसाकर कसकर पकड़ा हुआ है
जक री	-	रटती रहती हैं
सु	-	वह
ब्याधि	-	रोग, पीड़ा पहुँचाने वाली वस्तु
करी	-	भोगा

तिनहिं	- उनको
मन चकरी	- जिनका मन स्थिर नहीं रहता
मधुकर	- भौंरा, उद्धव के लिए गोपियों द्वारा प्रयुक्त संबोधन
हुते	- थे
पठाए	- भेजा
आगे के	- पहले के
पर हित	- दूसरों के कल्याण के लिए
डोलत धाए	- घूमते-फिरते थे
फेर	- फिर से
पाइहैं	- पा लेंगी
अनीति	- अन्याय

2

तुलसीदास

तुलसीदास का जन्म उत्तर प्रदेश के बाँदा ज़िले के राजापुर गाँव में सन् 1532 में हुआ था। कुछ विद्वान उनका जन्मस्थान सोरों (ज़िला-एटा) भी मानते हैं। तुलसी का बचपन बहुत संघर्षपूर्ण था। जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ही माता-पिता से उनका बिछोह हो गया। कहा जाता है कि गुरुकृपा से उन्हें रामभक्ति का मार्ग मिला। वे मानव-मूल्यों के उपासक कवि थे।

रामभक्ति परंपरा में तुलसी अतुलनीय हैं। **रामचरितमानस** कवि की अनन्य रामभक्ति और उनके सृजनात्मक कौशल का मनोरम उदाहरण है। उनके राम मानवीय मर्यादाओं और आदर्शों के प्रतीक हैं जिनके माध्यम से तुलसी ने नीति, स्नेह, शील, विनय, त्याग जैसे उदात्त आदर्शों को प्रतिष्ठित किया। **रामचरितमानस** उत्तरी भारत की जनता के बीच बहुत लोकप्रिय है। **मानस** के अलावा **कवितावली, गीतावली, दोहावली, कृष्णगीतावली, विनयपत्रिका** आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। सन् 1623 में काशी में उनका देहावसान हुआ।

तुलसी ने **रामचरितमानस** की रचना अवधी में और **विनयपत्रिका** तथा **कवितावली** की रचना ब्रजभाषा में की। उस समय प्रचलित सभी काव्य रूपों को तुलसी की रचनाओं में देखा जा सकता है। **रामचरितमानस** का मुख्य छंद चौपाई है तथा बीच-बीच में दोहे, सोरठे, हरिगीतिका तथा अन्य छंद पिरोए गए हैं। **विनयपत्रिका** की रचना गेय पदों में हुई है। **कवितावली** में सवैया और कवित्त छंद की छटा देखी जा सकती है। उनकी रचनाओं में प्रबंध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों का उत्कृष्ट रूप है।

यह अंश ***रामचरितमानस*** *के बाल कांड से लिया गया है। सीता स्वयंवर में राम द्वारा शिव-धनुष भंग के बाद मुनि परशुराम को जब यह समाचार मिला तो वे क्रोधित होकर वहाँ आते हैं। शिव-धनुष को खंडित देखकर वे आपे से बाहर हो जाते हैं। राम के विनय और विश्वामित्र के समझाने पर तथा राम की शक्ति की परीक्षा लेकर अंततः उनका गुस्सा शांत होता है। इस बीच राम, लक्ष्मण और परशुराम के बीच जो संवाद हुआ उस प्रसंग को यहाँ प्रस्तुत किया गया है। परशुराम के क्रोध भरे वाक्यों का उत्तर लक्ष्मण व्यंग्य वचनों से देते हैं। इस प्रसंग की विशेषता है लक्ष्मण की वीर रस से पगी व्यंग्योक्तियाँ और व्यंजना शैली की सरस अभिव्यक्ति।*

राम-लक्ष्मण-परशुराम संवाद

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा।।
आयेसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही।।
सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरिकरनी करि करिअ लराई।।
सुनहु राम जेहि सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।।
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा।।
सुनि मुनिबचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अवमाने।।
बहु धनुही तोरी लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं।।
येहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू।।

रे नृपबालक कालबस बोलत तोहि न सँभार।
धनुही सम त्रिपुरारिधनु बिदित सकल संसार।।

लखन कहा हसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना।।
का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नयन के भोरें।।
छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू।।
बोले चितै परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा।।
बालकु बोलि बधौं नहि तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही।।
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्वबिदित क्षत्रियकुल द्रोही।।
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही।।
सहसबाहुभुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा।।

मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीसकिसोर।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर।।

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महाभट मानी।।
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारु। चहत उड़ावन फूँकि पहारू।।
इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं ।।
देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना।।
भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहौं रिस रोकी।।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई।।
बधें पापु अपकीरति हारें। मारतहू पा परिअ तुम्हारें।।
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा।।

जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंसमनि बोले गिरा गंभीर।।

कौसिक सुनहु मंद येहु बालकु। कुटिलु कालबस निज कुल घालकु।।
भानुबंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुसु अबुधु असंकू।।
कालकवलु होइहि छन माहीं। कहौं पुकारि खोरि मोहि नाहीं।।
तुम्ह हटकहु जौ चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा।।
लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा।।
अपने मुहु तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी।।
नहि संतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू।।
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा।।

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु।।

तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा।।
सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा।।
अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुबादी बालकु बधजोगू।।
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब येहु मरनिहार भा साँचा।।
कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू।।
खर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही।।
उतर देत छोड़ौं बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे।।
न त येहि काटि कुठार कठोरे। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे।।

गाधिसूनु कह हृदय हसि मुनिहि हरियरे सूझ।
अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ।।

कहेउ लखन मुनि सीलु तुम्हारा। को नहि जान बिदित संसारा।।
माता पितहि उरिन भये नीकें। गुररिनु रहा सोचु बड़ जी कें।।
सो जनु हमरेहि माथें काढ़ा। दिन चलि गये ब्याज बड़ बाढ़ा।।
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली।।
सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा।।
भृगुबर परसु देखाबहु मोही। बिप्र बिचारि बचौं नृपद्रोही।।
मिले न कबहूँ सुभट रन गाढ़े। द्विजदेवता घरहि के बाढ़े।।
अनुचित कहि सबु लोगु पुकारे। रघुपति सयनहि लखनु नेवारे।।

लखन उतर आहुति सरिस भृगुबरकोपु कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु।।

प्रश्न-अभ्यास

1. परशुराम के क्रोध करने पर लक्ष्मण ने धनुष के टूट जाने के लिए कौन-कौन से तर्क दिए?
2. परशुराम के क्रोध करने पर राम और लक्ष्मण की जो प्रतिक्रियाएँ हुईं उनके आधार पर दोनों के स्वभाव की विशेषताएँ अपने शब्दों में लिखिए।

3. लक्ष्मण और परशुराम के संवाद का जो अंश आपको सबसे अच्छा लगा उसे अपने शब्दों में संवाद शैली में लिखिए।
4. परशुराम ने अपने विषय में सभा में क्या-क्या कहा, निम्न पद्यांश के आधार पर लिखिए–

    बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्वबिदित क्षत्रियकुल द्रोही।।
    भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही।।
    सहसबाहुभुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा।।

    मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीसकिसोर।
    गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर।।

5. लक्ष्मण ने वीर योद्धा की क्या-क्या विशेषताएँ बताई?
6. साहस और शक्ति के साथ विनम्रता हो तो बेहतर है। इस कथन पर अपने विचार लिखिए।
7. भाव स्पष्ट कीजिए–

    (क) बिहसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महाभट मानी।।
    पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू।।

    (ख) इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।।
    देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना।।

    (ग) गाधिसूनु कह हृदय हसि मुनिहि हरियरे सूझ।
    अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ।।

8. पाठ के आधार पर तुलसी के भाषा सौंदर्य पर दस पंक्तियाँ लिखिए।
9. इस पूरे प्रसंग में व्यंग्य का अनूठा सौंदर्य है। उदाहरण के साथ स्पष्ट कीजिए।
10. निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार पहचान कर लिखिए–

    (क) बालकु बोलि बधौं नहि तोही।

    (ख) कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा।

    (ग) तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा।
    बार बार मोहि लागि बोलावा।।

    (घ) लखन उतर आहुति सरिस भृगुबरकोपु कृसानु।
    बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु।।

रचना और अभिव्यक्ति

11. "सामाजिक जीवन में क्रोध की ज़रूरत बराबर पड़ती है। यदि क्रोध न हो तो मनुष्य दूसरे के द्वारा पहुँचाए जाने वाले बहुत से कष्टों की चिर-निवृत्ति का उपाय ही न कर सके।"

    आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का यह कथन इस बात की पुष्टि करता है कि क्रोध हमेशा नकारात्मक भाव

लिए नहीं होता बल्कि कभी-कभी सकारात्मक भी होता है। इसके पक्ष या विपक्ष में अपना मत प्रकट कीजिए।

12. संकलित अंश में राम का व्यवहार विनयपूर्ण और संयत है, लक्ष्मण लगातार व्यंग्य बाणों का उपयोग करते हैं और परशुराम का व्यवहार क्रोध से भरा हुआ है। आप अपने आपको इस परिस्थिति में रखकर लिखें कि आपका व्यवहार कैसा होता।
13. अपने किसी परिचित या मित्र के स्वभाव की विशेषताएँ लिखिए।
14. दूसरों की क्षमताओं को कम नहीं समझना चाहिए—इस शीर्षक को ध्यान में रखते हुए एक कहानी लिखिए।
15. उन घटनाओं को याद करके लिखिए जब आपने अन्याय का प्रतिकार किया हो।
16. अवधी भाषा आज किन-किन क्षेत्रों में बोली जाती है?

पाठेतर सक्रियता

- तुलसी की अन्य रचनाएँ पुस्तकालय से लेकर पढ़ें।
- दोहा और चौपाई के वाचन का एक पारंपरिक ढंग है। लय सहित इनके वाचन का अभ्यास कीजिए।
- कभी आपको पारंपरिक रामलीला अथवा रामकथा की नाट्य प्रस्तुति देखने का अवसर मिला होगा उस अनुभव को अपने शब्दों में लिखिए।
- इस प्रसंग की नाट्य प्रस्तुति करें।
- कोही, कुलिस, उरिन, नेवारे—इन शब्दों के बारे में शब्दकोश में दी गई विभिन्न जानकारियाँ प्राप्त कीजिए।

शब्द-संपदा

भंजनिहारा	-	भंग करने वाला, तोड़ने वाला
रिसाइ	-	क्रोध करना
रिपु	-	शत्रु
बिलगाउ	-	अलग होना
अवमाने	-	अपमान करना
लरिकाईं	-	बचपन में
परसु	-	फरसा, कुल्हाड़ी की तरह का एक शस्त्र (यही परशुराम का प्रमुख शस्त्र था)
कोही	-	क्रोधी
महिदेव	-	ब्राह्मण
बिलोक	-	देखकर
अर्भक	-	बच्चा

महाभट	–	महान योद्धा
मही	–	धरती
कुठारु	–	कुल्हाड़ा
कुम्हड़बतिया	–	बहुत कमज़ोर, निर्बल व्यक्ति, काशीफल या कुम्हड़े का बहुत छोटा फल
तरजनी	–	अँगूठे के पास की उँगली
कुलिस	–	कठोर
सरोष	–	क्रोध सहित
कौसिक	–	विश्वामित्र
भानुबंस	–	सूर्यवंश
निरंकुस	–	जिस पर किसी का दबाब न हो, मनमानी करने वाला
असंकू	–	शंका रहित
घालकु	–	नाश करने वाला
कालकवलु	–	जिसे काल ने अपना ग्रास बना लिया हो, मृत
अबुधु	–	नासमझ
खोरि	–	दोष
हटकह	–	मना करने पर
अछोभा	–	शांत, धीर, जो घबराया न हो
बधजोगू	–	मारने योग्य
अकरुन	–	जिसमें करुणा न हो
गाधिसूनु	–	गाधि के पुत्र यानी विश्वामित्र
अयमय	–	लोहे का बना हुआ
नेवारे	–	मना करना
ऊखमय	–	गन्ने से बना हुआ
कृसानु	–	अग्नि

यह भी जानें

दोहा – दोहा एक लोकप्रिय मात्रिक छंद है जिसकी पहली और तीसरी पंक्ति में 13–13 मात्राएँ होती हैं और दूसरी और चौथी पंक्ति में 11–11 मात्राएँ।

चौपाई – मात्रिक छंद चौपाई चार पंक्तियों का होता है और इसकी प्रत्येक पंक्ति में 16 मात्राएँ होती हैं।

तुलसी से पहले सूफ़ी कवियों ने भी अवधी भाषा में **दोहा-चौपाई छंद** का प्रयोग किया है जिसमें मलिक मुहम्मद जायसी का **पद्मावत** उल्लेखनीय है।

परशुराम और सहस्रबाहु की कथा

पाठ में 'सहसबाहु सम सो रिपु मोरा' का कई बार उल्लेख आया है। परशुराम और सहस्रबाहु के बैर की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। महाभारत के अनुसार यह कथा इस प्रकार है–

परशुराम ऋषि जमदग्नि के पुत्र थे। एक बार राजा कार्तवीर्य सहस्रबाहु शिकार खेलते हुए जमदग्नि के आश्रम में आए। जमदग्नि के पास कामधेनु गाय थी जो विशेष गाय थी, कहते हैं वह सभी कामनाएँ पूरी करती थी। कार्तवीर्य सहस्रबाहु ने ऋषि जमदग्नि से कामधेनु गाय की माँग की। ऋषि द्वारा मना किए जाने पर सहस्रबाहु ने कामधेनु गाय का बलपूर्वक अपहरण कर लिया। इस पर क्रोधित हो परशुराम ने सहस्रबाहु का वध कर दिया। इस कार्य की ऋषि जमदग्नि ने बहुत निंदा की और परशुराम को प्रायश्चित करने को कहा। उधर सहस्रबाहु के पुत्रों ने क्रोध में आकर ऋषि जमदग्नि का वध कर दिया। इस पर पुनः क्रोधित होकर परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन करने की प्रतिज्ञा की।

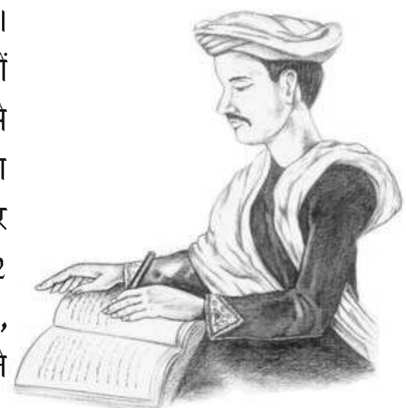

3
देव

देव का जन्म इटावा (उ.प्र.) में सन् 1673 में हुआ था। उनका पूरा नाम देवदत्त द्विवेदी था। देव के अनेक आश्रयदाताओं में औरंगजेब के पुत्र आजमशाह भी थे परंतु देव को सबसे अधिक संतोष और सम्मान उनकी कविता के गुणग्राही आश्रयदाता भोगीलाल से प्राप्त हुआ। उन्होंने उनकी कविता पर रीझकर लाखों की संपत्ति दान की। उनके काव्य ग्रंथों की संख्या 52 से 72 तक मानी जाती है। उनमें से **रसविलास, भावविलास, काव्यरसायन, भवानीविलास** आदि देव के प्रमुख ग्रंथ माने जाते हैं। उनकी मृत्यु सन् 1767 में हुई।

देव रीतिकाल के प्रमुख कवि हैं। रीतिकालीन कविता का संबंध दरबारों, आश्रयदाताओं से था इस कारण उसमें दरबारी संस्कृति का चित्रण अधिक हुआ है। देव भी इससे अछूते नहीं थे किंतु वे इस प्रभाव से जब-जब भी मुक्त हुए, उन्होंने प्रेम और सौंदर्य के सहज चित्र खींचे। आलंकारिकता और श्रृंगारिकता उनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। शब्दों की आवृत्ति के जरिए नया सौंदर्य पैदा करके उन्होंने सुंदर ध्वनि चित्र प्रस्तुत किए हैं।

*यहाँ संकलित **कवित्त-सवैयों** में एक ओर जहाँ रूप-सौंदर्य का आलंकारिक चित्रण देखने को मिलता है, वहीं दूसरी ओर प्रेम और प्रकृति के प्रति कवि के भावों की अंतरंग अभिव्यक्ति भी। पहले सवैये में कृष्ण के राजसी रूप सौंदर्य का वर्णन है जिसमें उस युग का सामंती वैभव झलकता है। दूसरे कवित्त में बसंत को बालक रूप में दिखाकर प्रकृति के साथ एक रागात्मक संबंध की अभिव्यक्ति हुई है। तीसरे कवित्त में पूर्णिमा की रात में चाँद-तारों से भरे आकाश की आभा का वर्णन है। चाँदनी रात की कांति को दर्शाने के लिए देव दूध में फेन जैसे पारदर्शी बिंब काम में लेते हैं, जो उनकी काव्य-कुशलता का परिचायक है।*

सवैया

पाँयनि नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनि कै धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई।
माथे किरीट बड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुखचंद जुन्हाई।
जै जग-मंदिर-दीपक सुंदर, श्रीब्रजदूलह 'देव' सहाई।।

कवित्त

डार द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झिंगूला सोहै तन छबि भारी दै।
पवन झूलावै, केकी-कीर बतरावैं 'देव',
कोकिल हलावै-हुलसावै कर तारी दै।।
पूरित पराग सों उतारो करै राई नोन,
कंजकली नायिका लतान सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै।।

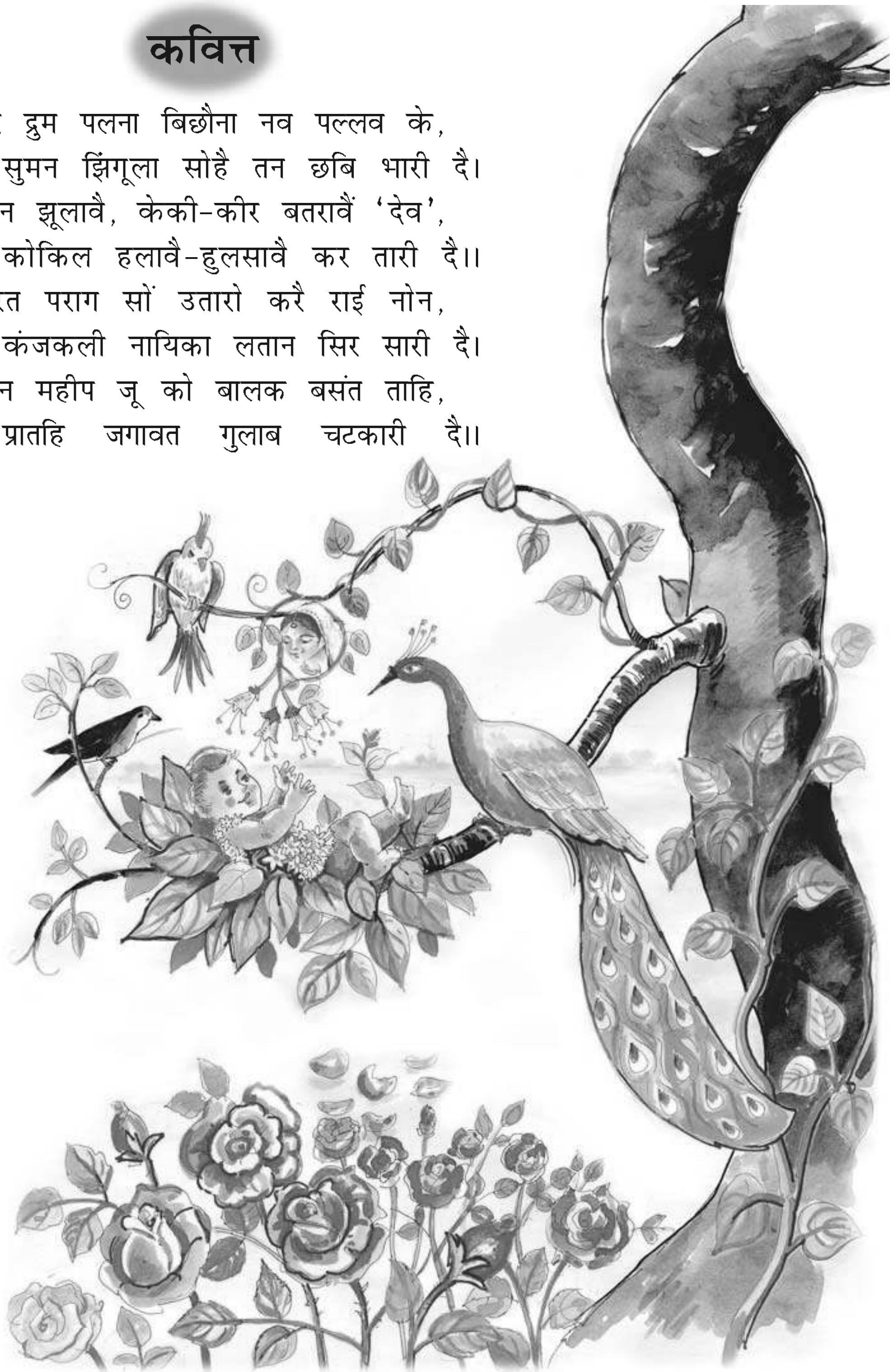

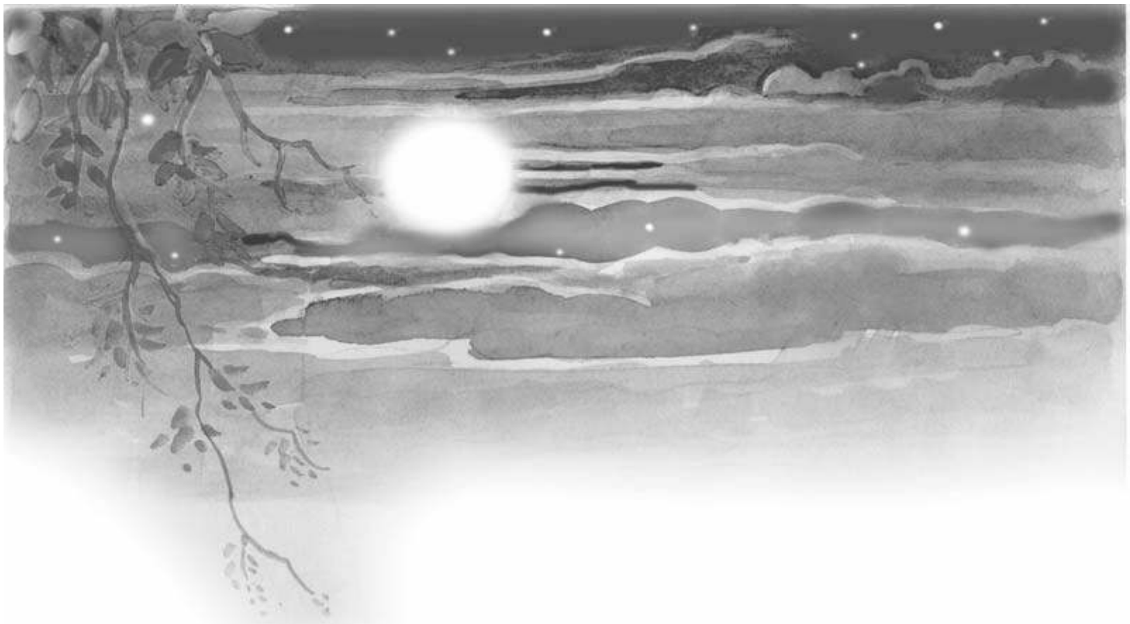

कवित्त

फटिक सिलानि सौं सुधार्‌यौ सुधा मंदिर,
उदधि दधि को सो अधिकाइ उमगे अमंद।
बाहर ते भीतर लौं भीति न दिखैए 'देव',
दूध को सो फेन फैल्यो आँगन फरसबंद।
तारा सी तरुनि तामें ठाढ़ी झिलमिली होति,
मोतिन की जोति मिल्यो मल्लिका को मकरंद।
आरसी से अंबर में आभा सी उजारी लगै,
प्यारी राधिका को प्रतिबिंब सो लगत चंद।।

प्रश्न-अभ्यास

1. कवि ने 'श्रीब्रजदूलह' किसके लिए प्रयुक्त किया है और उन्हें संसार रूपी मंदिर का दीपक क्यों कहा है?
2. पहले सवैये में से उन पंक्तियों को छाँटकर लिखिए जिनमें अनुप्रास और रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है?
3. निम्नलिखित पंक्तियों का काव्य-सौंदर्य स्पष्ट कीजिए–

   पाँयनि नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनि कै धुनि की मधुराई।
   साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई।
4. दूसरे कवित्त के आधार पर स्पष्ट करें कि ऋतुराज वसंत के बाल-रूप का वर्णन परंपरागत वसंत वर्णन से किस प्रकार भिन्न है।
5. 'प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै'–इस पंक्ति का भाव स्पष्ट कीजिए।
6. चाँदनी रात की सुंदरता को कवि ने किन-किन रूपों में देखा है?
7. 'प्यारी राधिका को प्रतिबिंब सो लगत चंद'–इस पंक्ति का भाव स्पष्ट करते हुए बताएँ कि इसमें कौन-सा अलंकार है?
8. तीसरे कवित्त के आधार पर बताइए कि कवि ने चाँदनी रात की उज्ज्वलता का वर्णन करने के लिए किन-किन उपमानों का प्रयोग किया है?
9. पठित कविताओं के आधार पर कवि देव की काव्यगत विशेषताएँ बताइए।

रचना और अभिव्यक्ति

10. आप अपने घर की छत से पूर्णिमा की रात देखिए तथा उसके सौंदर्य को अपनी कलम से शब्दबद्ध कीजिए।

पाठेतर सक्रियता

- भारतीय ऋतु चक्र में छह ऋतुएँ मानी गई हैं, वे कौन-कौन सी हैं?
- 'ग्लोबल वार्मिंग' के कारण ऋतुओं में क्या परिवर्तन आ रहे हैं? इस समस्या से निपटने के लिए आपकी क्या भूमिका हो सकती है?

शब्द-संपदा

मंजु	–	सुंदर
कटि	–	कमर
किंकिनि	–	करधनी, कमर में पहनने वाला आभूषण

लसै	–	सुशोभित
हुलसै	–	आनंदित होना
किरीट	–	मुकुट
मुखचंद	–	मुख रूपी चंद्रमा
जुन्हाई	–	चाँदनी
द्रुम	–	पेड़
सुमन झिंगूला	–	फूलों का झबला, ढीला-ढीला वस्त्र
केकी	–	मोर
कीर	–	तोता
हलावै-हुलसावे	–	हलावत, बातों की मिठास
उतारो करै राई नोन	–	जिस बच्चे को नज़र लगी हो उसके सिर के चारों ओर राई नमक घुमाकर आग में जलाने का टोटका
कंजकली	–	कमल की कली
चटकारी	–	चुटकी
फटिक (स्फटिक)	–	प्राकृतिक क्रिस्टल
सिलानि	–	शिला पर
उदधि	–	समुद्र
उमगे	–	उमड़ना
अमंद	–	जो कम न हो
भीति	–	दीवार
मल्लिका	–	बेले की जाति का एक सफ़ेद फूल
मकरंद	–	फूलों का रस
आरसी	–	आइना

यह भी जानें

कवित्त – कवित्त वार्णिक छंद है, उसके प्रत्येक चरण में 31-31 वर्ण होते हैं। प्रत्येक चरण के सोलहवें या फिर पंद्रहवें वर्ण पर यति रहती है। सामान्यत: चरण का अंतिम वर्ण गुरु होता है।

'पाँयनि नूपुर' के आलोक में भाव-साम्य के लिए पढ़ें–

सीस मुकुट कटि काछनि, कर मुरली उर माल।
यों बानक मौं मन सदा, बसौ बिहारी लाल।।

–बिहारी

रीतिकालीन कविता का वसंत ऋतु का एक चित्र यह भी देखिए–

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलित कलीन किलकंत है।
कहै पदमाकर परागन में पौनहू में
पातन में पिक में पलासन पगंत है।
द्वारे में दिसान में दुनी में देस देसन में
देखौ दीपदीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में
बनन में बागन में बगर्‌यौ बसंत है।।

–पद्‌माकर

4

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर **प्रसाद** का जन्म सन् 1889 में वाराणसी में हुआ। काशी के प्रसिद्ध क्वींस कॉलेज में वे पढ़ने गए परंतु स्थितियाँ अनुकूल न होने के कारण आठवीं से आगे नहीं पढ़ पाए। बाद में घर पर ही संस्कृत, हिंदी, फ़ारसी का अध्ययन किया। छायावादी काव्य प्रवृत्ति के प्रमुख कवियों में से एक जयशंकर प्रसाद का सन् 1937 में निधन हो गया।

उनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं–**चित्राधार**, **कानन-कुसुम**, **झरना**, **आँसू**, **लहर** और **कामायनी**। आधुनिक हिंदी की श्रेष्ठतम काव्य-कृति मानी जाने वाली **कामायनी** पर उन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक दिया गया। वे कवि के साथ-साथ सफल गद्यकार भी थे। **अजातशत्रु**, **चंद्रगुप्त**, **स्कंदगुप्त** और **ध्रुवस्वामिनी** उनके नाटक हैं तो **कंकाल**, **तितली** और **इरावती** उपन्यास। **आकाशदीप**, **आँधी** और **इंद्रजाल** उनके कहानी संग्रह हैं।

प्रसाद का साहित्य जीवन की कोमलता, माधुर्य, शक्ति और ओज का साहित्य माना जाता है। छायावादी कविता की अतिशय काल्पनिकता, सौंदर्य का सूक्ष्म चित्रण, प्रकृति-प्रेम, देश-प्रेम और शैली की लाक्षणिकता उनकी कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इतिहास और दर्शन में उनकी गहरी रुचि थी जो उनके साहित्य में स्पष्ट दिखाई देती है।

*प्रेमचंद के संपादन में **हंस** (पत्रिका) का एक आत्मकथा विशेषांक निकलना तय हुआ था। प्रसाद जी के मित्रों ने आग्रह किया कि वे भी आत्मकथा लिखें। प्रसाद जी इससे सहमत न थे। इसी असहमति के तर्क से पैदा हुई कविता है–**आत्मकथ्य**। यह कविता पहली बार 1932 में **हंस** के आत्मकथा विशेषांक में प्रकाशित हुई थी। छायावादी शैली में लिखी गई इस कविता में जयशंकर प्रसाद ने जीवन के यथार्थ एवं अभाव पक्ष की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। छायावादी सूक्ष्मता के अनुरूप ही अपने मनोभावों को अभिव्यक्त करने के लिए जयशंकर प्रसाद ने ललित, सुंदर एवं नवीन शब्दों और बिंबों का प्रयोग किया है। इन्हीं शब्दों एवं बिंबों के सहारे उन्होंने बताया है कि उनके जीवन की कथा एक सामान्य व्यक्ति के जीवन की कथा है। इसमें ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे महान और रोचक मानकर लोग वाह-वाह करेंगे। कुल मिलाकर इस कविता में एक तरफ़ कवि द्वारा यथार्थ की स्वीकृति है तो दूसरी तरफ़ एक महान कवि की विनम्रता भी।*

आत्मकथ्य

मधुप गुन-गुना कर कह जाता कौन कहानी यह अपनी,
मुरझाकर गिर रहीं पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी।
इस गंभीर अनंत-नीलिमा में असंख्य जीवन-इतिहास
यह लो, करते ही रहते हैं अपना व्यंग्य-मलिन उपहास
तब भी कहते हो—कह डालूँ दुर्बलता अपनी बीती।
तुम सुनकर सुख पाओगे, देखोगे—यह गागर रीती।
किंतु कहीं ऐसा न हो कि तुम ही खाली करने वाले—
अपने को समझो, मेरा रस ले अपनी भरने वाले।
यह विडंबना! अरी सरलते तेरी हँसी उड़ाऊँ मैं।
भूलें अपनी या प्रवंचना औरों की दिखलाऊँ मैं।
उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ, मधुर चाँदनी रातों की।
अरे खिल-खिला कर हँसते होने वाली उन बातों की।
मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया।
आलिंगन में आते-आते मुसक्या कर जो भाग गया।
जिसके अरुण-कपोलों की मतवाली सुंदर छाया में।
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में।
उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पंथा की।
सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों मेरी कंथा की?
छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ?
सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्म-कथा?
अभी समय भी नहीं, थकी सोई है मेरी मौन व्यथा।

प्रश्न-अभ्यास

1. कवि आत्मकथा लिखने से क्यों बचना चाहता है?
2. आत्मकथा सुनाने के संदर्भ में 'अभी समय भी नहीं' कवि ऐसा क्यों कहता है?
3. स्मृति को 'पाथेय' बनाने से कवि का क्या आशय है?
4. भाव स्पष्ट कीजिए–

   (क) मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया।
   आलिंगन में आते-आते मुसक्या कर जो भाग गया।

   (ख) जिसके अरुण कपोलों की मतवाली सुंदर छाया में।
   अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में।

5. 'उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ, मधुर चाँदनी रातों की'–कथन के माध्यम से कवि क्या कहना चाहता है?
6. 'आत्मकथ्य' कविता की काव्यभाषा की विशेषताएँ उदाहरण सहित लिखिए।
7. कवि ने जो सुख का स्वप्न देखा था उसे कविता में किस रूप में अभिव्यक्त किया है?

रचना और अभिव्यक्ति

8. इस कविता के माध्यम से प्रसाद जी के व्यक्तित्व की जो झलक मिलती है, उसे अपने शब्दों में लिखिए।
9. आप किन व्यक्तियों की आत्मकथा पढ़ना चाहेंगे और क्यों?
10. कोई भी अपनी आत्मकथा लिख सकता है। उसके लिए विशिष्ट या बड़ा होना ज़रूरी नहीं। हरियाणा राज्य के गुड़गाँव में घरेलू सहायिका के रूप में काम करने वाली बेबी हालदार की आत्मकथा "आलो आंधारि" बहुतों के द्वारा सराही गई। आत्मकथात्मक शैली में अपने बारे में कुछ लिखिए।

पाठेतर सक्रियता

- किसी भी चर्चित व्यक्ति का अपनी निजता को सार्वजनिक करना या दूसरों का उनसे ऐसी अपेक्षा करना सही है–इस विषय के पक्ष-विपक्ष में कक्षा में चर्चा कीजिए।
- बिना ईमानदारी और साहस के आत्मकथा नहीं लिखी जा सकती। गांधी जी की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' पढ़कर पता लगाइए कि उसकी क्या-क्या विशेषताएँ हैं?

शब्द-संपदा

मधुप	–	मन रूपी भौंरा
अनंत नीलिमा	–	अंतहीन विस्तार
व्यंग्य मलिन	–	खराब ढंग से निंदा करना
गागर–रीती	–	ऐसा मन जिसमें कोई भाव नहीं, खाली घड़ा
प्रवंचना	–	धोखा
मुसक्या कर	–	मुसकराकर
अरुण–कोपल	–	लाल गाल
अनुरागिनी उषा	–	प्रेम भरी भोर
स्मृति पाथेय	–	स्मृति रूपी संबल
पंथा	–	रास्ता, राह
कंथा	–	अंतर्मन, गुदड़ी

यह भी जानें

- प्रगतिशील चेतना की साहित्यिक मासिक पत्रिका **हंस** प्रेमचंद ने सन् 1930 से 1936 तक निकाली थी। पुनः सन् 1986 से यह साहित्यिक पत्रिका निकल रही है और इसके संपादक राजेंद्र यादव हैं।
- बनारसीदास जैन कृत **अर्धकथानक** हिंदी की पहली आत्मकथा मानी जाती है। इसकी रचना सन् 1641 में हुई और यह पद्यात्मक है।

आत्मकथ्य का एक अन्य रूप यह भी देखें–

मैं वह खंडहर का भाग लिए फिरता हूँ।
मैं रोया, इसको तुम कहते हो गाना,
मैं फूट पड़ा, तुम कहते, छंद बनाना;
क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए,
मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना!
मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूँ,
मैं मादकता नि:शेष लिए फिरता हूँ;
जिसको सुनकर जग झूम, झुके, लहराए,
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूँ!

*–कवि बच्चन की **आत्म-परिचय***
कविता का अंश

5
सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकांत **त्रिपाठी 'निराला'** का जन्म बंगाल के महिषादल में सन् 1899 में हुआ। वे मूलत: गढ़ाकोला (ज़िला उन्नाव), उत्तर प्रदेश के निवासी थे। निराला की औपचारिक शिक्षा नौवीं तक महिषादल में ही हुई। उन्होंने स्वाध्याय से संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेज़ी का ज्ञान अर्जित किया। वे संगीत और दर्शनशास्त्र के भी गहरे अध्येता थे। रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद की विचारधारा ने उन पर विशेष प्रभाव डाला।

निराला का पारिवारिक जीवन दुखों और संघर्षों से भरा था। आत्मीय जनों के असामयिक निधन ने उन्हें भीतर तक तोड़ दिया। साहित्यिक मोर्चे पर भी उन्होंने अनवरत संघर्ष किया। सन् 1961 में उनका देहांत हो गया।

उनकी प्रमुख काव्य-रचनाएँ हैं–**अनामिका, परिमल, गीतिका, कुकुरमुत्ता** और **नए पत्ते**। उपन्यास, कहानी, आलोचना और निबंध लेखन में भी उनकी ख्याति अविस्मरणीय है। **निराला रचनावली** के आठ खंडों में उनका संपूर्ण साहित्य प्रकाशित है।

निराला विस्तृत सरोकारों के कवि हैं। दार्शनिकता, विद्रोह, क्रांति, प्रेम की तरलता और प्रकृति का विराट तथा उदात्त चित्र उनकी रचनाओं में उपस्थित है। उनके विद्रोही स्वभाव ने कविता के भाव-जगत और शिल्प-जगत में नए प्रयोगों को संभव किया। छायावादी रचनाकारों में उन्होंने सबसे पहले मुक्त छंद का प्रयोग किया। शोषित, उपेक्षित, पीड़ित और प्रताड़ित जन के प्रति उनकी कविता में जहाँ गहरी सहानुभूति का भाव मिलता है, वहीं शोषक वर्ग और सत्ता के प्रति प्रचंड प्रतिकार का भाव भी।

उत्साह *एक आह्वान गीत है जो बादल को संबोधित है। बादल निराला का प्रिय विषय है। कविता में बादल एक तरफ़ पीड़ित-प्यासे जन की आकांक्षा को पूरा करने वाला है, तो दूसरी तरफ़ वही बादल नयी कल्पना और नए अंकुर के लिए विध्वंस, विप्लव और क्रांति चेतना को संभव करने वाला भी। कवि जीवन को व्यापक और समग्र दृष्टि से देखता है। कविता में ललित कल्पना और क्रांति-चेतना दोनों हैं। सामाजिक क्रांति या बदलाव में साहित्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है, निराला इसे 'नवजीवन' और 'नूतन कविता' के संदर्भों में देखते हैं।*

अट नहीं रही है *कविता फागुन की मादकता को प्रकट करती है। कवि फागुन की सर्वव्यापक सुंदरता को अनेक संदर्भों में देखता है। जब मन प्रसन्न हो तो हर तरफ़ फागुन का ही सौंदर्य और उल्लास दिखाई पड़ता है। सुंदर शब्दों के चयन एवं लय ने कविता को भी फागुन की ही तरह सुंदर एवं ललित बना दिया है।*

उत्साह

बादल, गरजो!–
घेर घेर घोर गगन, धाराधर ओ!
ललित ललित, काले घुँघराले,
बाल कल्पना के-से पाले,
विद्युत-छबि उर में, कवि, नवजीवन वाले!
वज्र छिपा, नूतन कविता
फिर भर दो–
बादल, गरजो!
विकल विकल, उन्मन थे उन्मन
विश्व के निदाघ के सकल जन,
आए अज्ञात दिशा से अनंत के घन!
तप्त धरा, जल से फिर
शीतल कर दो–
बादल, गरजो!

अट नहीं रही है

अट नहीं रही है
आभा फागुन की तन
सट नहीं रही है।

कहीं साँस लेते हो,
घर-घर भर देते हो,
उड़ने को नभ में तुम
पर-पर कर देते हो,
आँख हटाता हूँ तो
हट नहीं रही है।
पत्तों से लदी डाल
कहीं हरी, कहीं लाल,
कहीं पड़ी है उर में
मंद-गंध-पुष्प-माल,
पाट-पाट शोभा-श्री
पट नहीं रही है।

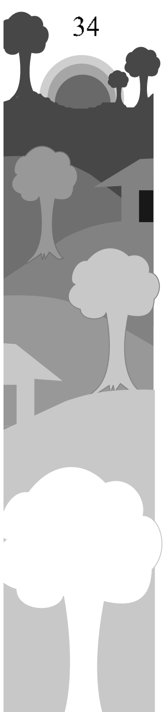

प्रश्न-अभ्यास

उत्साह

1. कवि बादल से फुहार, रिमझिम या बरसने के स्थान पर 'गरजने' के लिए कहता है, क्यों?
2. कविता का शीर्षक **उत्साह** क्यों रखा गया है?
3. कविता में बादल किन-किन अर्थों की ओर संकेत करता है?
4. शब्दों का ऐसा प्रयोग जिससे कविता के किसी खास भाव या दृश्य में ध्वन्यात्मक प्रभाव पैदा हो, नाद-सौंदर्य कहलाता है। **उत्साह** कविता में ऐसे कौन-से शब्द हैं जिनमें नाद-सौंदर्य मौजूद है, छाँटकर लिखें।

रचना और अभिव्यक्ति

5. जैसे बादल उमड़-घुमड़कर बारिश करते हैं वैसे ही कवि के अंतर्मन में भी भावों के बादल उमड़-घुमड़कर कविता के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। ऐसे ही किसी प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर अपने उमड़ते भावों को कविता में उतारिए।

पाठेतर सक्रियता

- बादलों पर अनेक कविताएँ हैं। कुछ कविताओं का संकलन करें और उनका चित्रांकन भी कीजिए।

अट नहीं रही है

1. छायावाद की एक खास विशेषता है अंतर्मन के भावों का बाहर की दुनिया से सामंजस्य बिठाना। कविता की किन पंक्तियों को पढ़कर यह धारणा पुष्ट होती है? लिखिए।
2. कवि की आँख फागुन की सुंदरता से क्यों नहीं हट रही है?
3. प्रस्तुत कविता में कवि ने प्रकृति की व्यापकता का वर्णन किन रूपों में किया है?
4. फागुन में ऐसा क्या होता है जो बाकी ॠतुओं से भिन्न होता है?
5. इन कविताओं के आधार पर निराला के काव्य-शिल्प की विशेषताएँ लिखिए।

रचना और अभिव्यक्ति

6. होली के आसपास प्रकृति में जो परिवर्तन दिखाई देते हैं, उन्हें लिखिए।

पाठेतर सक्रियता

- फागुन में गाए जाने वाले गीत जैसे होरी, फाग आदि गीतों के बारे में जानिए।

शब्द-संपदा

धाराधर	-	बादल
उन्मन	-	कहीं मन न टिकने की स्थिति, अनमनापन
निदाघ	-	गर्मी
सकल	-	सब, सारे
आभा	-	चमक
वज्र	-	कठोर, भीषण
अट	-	समाना, प्रविष्ट
पाट-पाट	-	जगह-जगह
शोभा-श्री	-	सौंदर्य से भरपूर
पट	-	समा नहीं रही है

इस कविता में भी **निराला** फागुन के सौंदर्य में डूब गए हैं। उनमें फागुन की आभा रच गई है, ऐसी आभा जिसे न शब्दों से अलग किया जा सकता है, न फागुन से।

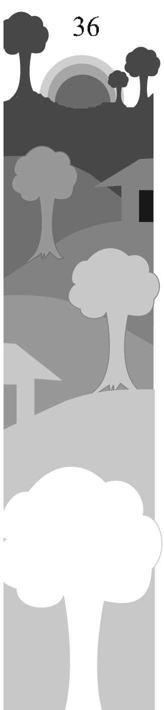

फूटे हैं आमों में बौर
भौंर वन-वन टूटे हैं।
होली मची ठौर-ठौर,
सभी बंधन छूटे हैं।

फागुन के रंग राग,
बाग-वन फाग मचा है,
भर गये मोती के झाग,
जनों के मन लूटे हैं।

माथे अबीर से लाल,
गाल सेंदुर के देखे,
आँखें हुई हैं गुलाल,
गेरू के ढेले कूटे हैं।

6
नागार्जुन

नागार्जुन का जन्म बिहार के दरभंगा ज़िले के सतलखा गाँव में सन् 1911 में हुआ। उनका मूल नाम वैद्यनाथ मिश्र था। आरंभिक शिक्षा संस्कृत पाठशाला में हुई, फिर अध्ययन के लिए वे बनारस और कलकत्ता (कोलकाता) गए। 1936 में वे श्रीलंका गए, और वहीं बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए। दो साल प्रवास के बाद 1938 में स्वदेश लौट आए। घुमक्कड़ी और अक्खड़ स्वभाव के धनी नागार्जुन ने अनेक बार संपूर्ण भारत की यात्रा की। सन् 1998 में उनका देहांत हो गया।

नागार्जुन की प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं–**युगधारा**, **सतरंगे पंखों वाली**, **हज़ार-हज़ार बाँहों वाली**, **तुमने कहा था**, **पुरानी जूतियों का कोरस**, **आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने**, **मैं मिलटरी का बूढ़ा घोड़ा**। नागार्जुन ने कविता के साथ-साथ उपन्यास और अन्य गद्य विधाओं में भी लेखन किया है। उनका संपूर्ण कृतित्व **नागार्जुन रचनावली** के सात खंडों में प्रकाशित है। साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया जिनमें प्रमुख हैं हिंदी अकादमी, दिल्ली का शिखर सम्मान, उत्तर प्रदेश का भारत भारती पुरस्कार एवं बिहार का राजेंद्र प्रसाद पुरस्कार। मैथिली भाषा में कविता के लिए उन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्रदान किया गया।

राजनैतिक सक्रियता के कारण उन्हें अनेक बार जेल जाना पड़ा। हिंदी और मैथिली में समान रूप से लेखन करने वाले नागार्जुन ने बांग्ला और संस्कृत में भी कविताएँ लिखीं। मातृभाषा मैथिली में वे 'यात्री' नाम से प्रतिष्ठित हैं।

लोकजीवन से गहरा सरोकार रखने वाले नागार्जुन भ्रष्टाचार, राजनीतिक स्वार्थ और समाज की पतनशील स्थितियों के प्रति अपने साहित्य में विशेष सजग रहे। वे व्यंग्य में माहिर हैं,

इसलिए उन्हें आधुनिक कबीर भी कहा जाता है। छायावादोत्तर दौर के वे ऐसे अकेले कवि हैं, जिनकी कविता गाँव की चौपालों और साहित्यिक दुनिया में समान रूप से लोकप्रिय रही। वे वास्तविक अर्थों में जनकवि हैं। सामयिक बोध से गहराई से जुड़े नागार्जुन की आंदोलनधर्मी कविताओं को व्यापक लोकप्रियता मिली। नागार्जुन ने छंदों में काव्य-रचना की और मुक्त छंद में भी।

यह दंतुरित मुसकान *कविता में छोटे बच्चे की मनोहारी मुसकान देखकर कवि के मन में जो भाव उमड़ते हैं उन्हें कविता में अनेक बिंबों के माध्यम से प्रकट किया गया है। कवि का मानना है कि इस सुंदरता में ही जीवन का संदेश है। इस सुंदरता की व्याप्ति ऐसी है कि कठोर से कठोर मन भी पिघल जाए। इस दंतुरित मुसकान की मोहकता तब और बढ़ जाती है जब उसके साथ नज़रों का बाँकपन जुड़ जाता है।*

फसल शब्द सुनते ही खेतों में लहलहाती फसल आँखों के सामने आ जाती है। परंतु फसल है क्या और उसे पैदा करने में किन-किन तत्वों का योगदान होता है, इसे बताया है नागार्जुन ने अपनी कविता ***फसल*** *में। कविता यह भी रेखांकित करती है कि प्रकृति और मनुष्य के सहयोग से ही सृजन संभव है। बोलचाल की भाषा की गति और लय कविता को प्रभावशाली बनाती है।*

कहना न होगा कि यह कविता हमें उपभोक्ता-संस्कृति के दौर में कृषि-संस्कृति के निकट ले जाती है।

यह दंतुरित मुसकान

तुम्हारी यह दंतुरित मुसकान
मृतक में भी डाल देगी जान
धूलि-धूसर तुम्हारे ये गात...
छोड़कर तालाब मेरी झोंपड़ी में खिल रहे जलजात
परस पाकर तुम्हारा ही प्राण,
पिघलकर जल बन गया होगा कठिन पाषाण

छू गया तुमसे कि झरने लग पड़े शेफालिका के फूल
बाँस था कि बबूल?
तुम मुझे पाए नहीं पहचान?
देखते ही रहोगे अनिमेष!
थक गए हो?
आँख लूँ मैं फेर?
क्या हुआ यदि हो सके परिचित न पहली बार?
यदि तुम्हारी माँ न माध्यम बनी होती आज
मैं न सकता देख
मैं न पाता जान
तुम्हारी यह दंतुरित मुसकान
धन्य तुम, माँ भी तुम्हारी धन्य!
चिर प्रवासी मैं इतर, मैं अन्य!
इस अतिथि से प्रिय तुम्हारा क्या रहा संपर्क
उँगलियाँ माँ की कराती रही हैं मधुपर्क
देखते तुम इधर कनखी मार
और होतीं जब कि आँखें चार
तब तुम्हारी दंतुरित मुसकान
मुझे लगती बड़ी ही छविमान!

फसल

एक के नहीं,
दो के नहीं,
ढेर सारी नदियों के पानी का जादू:
एक के नहीं,
दो के नहीं,
लाख-लाख कोटि-कोटि हाथों के स्पर्श की गरिमा:
एक की नहीं,

दो की नहीं,
हज़ार-हज़ार खेतों की मिट्टी का गुण धर्म:

फसल क्या है?
और तो कुछ नहीं है वह
नदियों के पानी का जादू है वह
हाथों के स्पर्श की महिमा है
भूरी-काली-संदली मिट्टी का गुण धर्म है
रूपांतर है सूरज की किरणों का
सिमटा हुआ संकोच है हवा की थिरकन का!

यह दंतुरित मुसकान

1. बच्चे की दंतुरित मुसकान का कवि के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है?
2. बच्चे की मुसकान और एक बड़े व्यक्ति की मुसकान में क्या अंतर है?
3. कवि ने बच्चे की मुसकान के सौंदर्य को किन-किन बिंबों के माध्यम से व्यक्त किया है?
4. भाव स्पष्ट कीजिए-
   (क) छोड़कर तालाब मेरी झोंपड़ी में खिल रहे जलजात।
   (ख) छू गया तुमसे कि झरने लग पड़े शेफालिका के फूल
   बाँस था कि बबूल?

रचना और अभिव्यक्ति

5. मुसकान और क्रोध भिन्न-भिन्न भाव हैं। इनकी उपस्थिति से बने वातावरण की भिन्नता का चित्रण कीजिए।
6. **दंतुरित मुसकान** से बच्चे की उम्र का अनुमान लगाइए और तर्क सहित उत्तर दीजिए।
7. बच्चे से कवि की मुलाकात का जो शब्द-चित्र उपस्थित हुआ है उसे अपने शब्दों में लिखिए।

पाठेतर सक्रियता

- आप जब भी किसी बच्चे से पहली बार मिलें तो उसके हाव-भाव, व्यवहार आदि को सूक्ष्मता से देखिए और उस अनुभव को कविता या अनुच्छेद के रूप में लिखिए।
- एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा नागार्जुन पर बनाई गई फ़िल्म देखिए।

फसल

1. कवि के अनुसार फसल क्या है?
2. कविता में फसल उपजाने के लिए आवश्यक तत्वों की बात कही गई है। वे आवश्यक तत्व कौन-कौन से हैं?
3. फसल को 'हाथों के स्पर्श की गरिमा' और 'महिमा' कहकर कवि क्या व्यक्त करना चाहता है?
4. भाव स्पष्ट कीजिए–

   (क) रूपांतर है सूरज की किरणों का
   सिमटा हुआ संकोच है हवा की थिरकन का!

रचना और अभिव्यक्ति

5. कवि ने फसल को हज़ार-हज़ार खेतों की मिट्टी का गुण-धर्म कहा है–

   (क) मिट्टी के गुण-धर्म को आप किस तरह परिभाषित करेंगे?

   (ख) वर्तमान जीवन शैली मिट्टी के गुण-धर्म को किस-किस तरह प्रभावित करती है?

   (ग) मिट्टी द्वारा अपना गुण-धर्म छोड़ने की स्थिति में क्या किसी भी प्रकार के जीवन की कल्पना की जा सकती है?

   (घ) मिट्टी के गुण-धर्म को पोषित करने में हमारी क्या भूमिका हो सकती है?

पाठेतर सक्रियता

- इलेक्ट्रॉनिक एवं प्रिंट मीडिया द्वारा आपने किसानों की स्थिति के बारे में बहुत कुछ सुना, देखा और पढ़ा होगा। एक सुदृढ़ कृषि-व्यवस्था के लिए आप अपने सुझाव देते हुए अखबार के संपादक को पत्र लिखिए।
- फसलों के उत्पादन में महिलाओं के योगदान को हमारी अर्थव्यवस्था में महत्त्व क्यों नहीं दिया जाता है? इस बारे में कक्षा में चर्चा कीजिए।

नागार्जुन

शब्द-संपदा

दंतुरित	-	बच्चों के नए-नए दाँत
धूलि-धूसर गात	-	धूल मिट्टी से सने अंग-प्रत्यंग
जलजात	-	कमल का फूल
अनिमेष	-	बिना पलक झपकाए लगातार देखना
इतर	-	दूसरा
मधुपर्क	-	दही, घी, शहद, जल और दूध का योग जो देवता और अतिथि के सामने रखा जाता है। आम लोग इसे पंचामृत कहते हैं, कविता में इसका प्रयोग बच्चे को जीवन देने वाला आत्मीयता की मिठास से युक्त माँ के प्यार के रूप में हुआ है
कनखी	-	तिरछी निगाह से देखना
छविमान	-	सुंदर

7

गिरिजाकुमार माथुर

गिरिजाकुमार माथुर का जन्म सन् 1918 में गुना, मध्य प्रदेश में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा झाँसी, उत्तर प्रदेश में ग्रहण करने के बाद उन्होंने एम.ए. अंग्रेज़ी व एल.एल.बी. की उपाधि लखनऊ से अर्जित की। शुरू में कुछ समय तक वकालत की। बाद में आकाशवाणी और दूरदर्शन में कार्यरत हुए। उनका निधन सन् 1994 में हुआ।

गिरिजाकुमार माथुर की प्रमुख रचनाएँ हैं–**नाश और निर्माण**, **धूप के धान**, **शिलापंख चमकीले**, **भीतरी नदी की यात्रा** (काव्य-संग्रह); **जन्म कैद** (नाटक); **नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ** (आलोचना)।

नयी कविता के कवि गिरिजाकुमार माथुर रोमानी मिज़ाज के कवि माने जाते हैं। वे विषय की मौलिकता के पक्षधर तो हैं परंतु शिल्प की विलक्षणता को नज़रअंदाज़ करके नहीं। चित्र को अधिक स्पष्ट करने के लिए वे वातावरण के रंग को भरते हैं। वे मुक्त छंद में ध्वनि साम्य के प्रयोग के कारण तुक के बिना भी कविता में संगीतात्मकता संभव कर सके हैं। भाषा के दो रंग उनकी कविताओं में मौजूद हैं। वे जहाँ रोमानी कविताओं में छोटी-छोटी ध्वनि वाले बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करते हैं, वहीं क्लासिक मिज़ाज की कविताओं में लंबी और गंभीर ध्वनि वाले शब्दों को तरजीह देते हैं।

छाया मत छूना *कविता के माध्यम से कवि यह कहना चाहता है कि जीवन में सुख और दुख दोनों की उपस्थिति है। विगत के सुख को यादकर वर्तमान के दुख को और गहरा करना तर्कसंगत नहीं है। कवि के शब्दों में इससे दुख दूना होता है। विगत की सुखद काल्पनिकता से चिपके रहकर वर्तमान से पलायन की अपेक्षा, कठिन यथार्थ से रू-ब-रू होना ही जीवन की प्राथमिकता होनी चाहिए।*

कविता अतीत की स्मृतियों को भूल वर्तमान का सामना कर भविष्य का वरण करने का संदेश देती है। वह यह बताती है कि जीवन के सत्य को छोड़कर उसकी छायाओं से भ्रमित रहना जीवन की कठोर वास्तविकता से दूर रहना है। कविता में रोमानी भावबोध की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

छाया मत छूना

छाया मत छूना
मन, होगा दुख दूना।
जीवन में हैं सुरंग सुधियाँ सुहावनी
छवियों की चित्र-गंध फैली मनभावनी;
तन-सुगंध शेष रही, बीत गई यामिनी,
कुंतल के फूलों की याद बनी चाँदनी।
भूली-सी एक छुअन बनता हर जीवित क्षण–
छाया मत छूना
मन, होगा दुख दूना।
यश है या न वैभव है, मान है न सरमाया;
जितना ही दौड़ा तू उतना ही भरमाया।
प्रभुता का शरण-बिंब केवल मृगतृष्णा है,
हर चंद्रिका में छिपी एक रात कृष्णा है।
जो है यथार्थ कठिन उसका तू कर पूजन-
छाया मत छूना
मन, होगा दुख दूना।
दुविधा-हत साहस है, दिखता है पंथ नहीं,
देह सुखी हो पर मन के दुख का अंत नहीं।
दुख है न चाँद खिला शरद-रात आने पर,
क्या हुआ जो खिला फूल रस-बसंत जाने पर?
जो न मिला भूल उसे कर तू भविष्य वरण,
छाया मत छूना
मन, होगा दुख दूना।

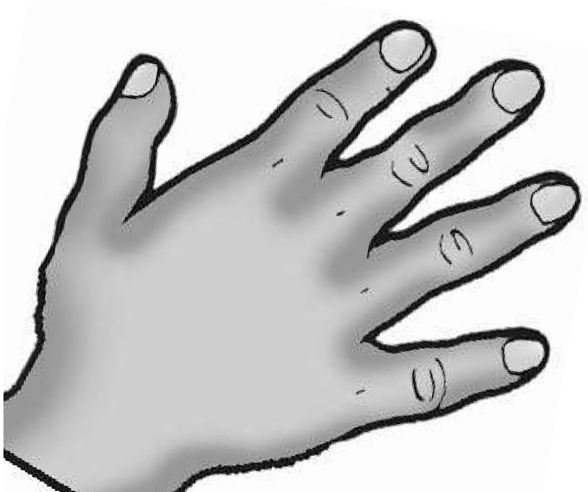

प्रश्न-अभ्यास

1. कवि ने कठिन यथार्थ के पूजन की बात क्यों कही है?
2. भाव स्पष्ट कीजिए–

   प्रभुता का शरण-बिंब केवल मृगतृष्णा है,
   हर चंद्रिका में छिपी एक रात कृष्णा है।
3. 'छाया' शब्द यहाँ किस संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है? कवि ने उसे छूने के लिए मना क्यों किया है?
4. कविता में विशेषण के प्रयोग से शब्दों के अर्थ में विशेष प्रभाव पड़ता है, जैसे कठिन यथार्थ।

   कविता में आए ऐसे अन्य उदाहरण छाँटकर लिखिए और यह भी लिखिए कि इससे शब्दों के अर्थ में क्या विशिष्टता पैदा हुई?
5. 'मृगतृष्णा' किसे कहते हैं, कविता में इसका प्रयोग किस अर्थ में हुआ है?
6. 'बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि ले' यह भाव कविता की किस पंक्ति में झलकता है?
7. कविता में व्यक्त दुख के कारणों को स्पष्ट कीजिए।

रचना और अभिव्यक्ति

8. 'जीवन में हैं सुरंग सुधियाँ सुहावनी', से कवि का अभिप्राय जीवन की मधुर स्मृतियों से है। आपने अपने जीवन की कौन-कौन सी स्मृतियाँ संजो रखी हैं?
9. 'क्या हुआ जो खिला फूल रस-बसंत जाने पर?' कवि का मानना है कि समय बीत जाने पर भी उपलब्धि मनुष्य को आनंद देती है। क्या आप ऐसा मानते हैं? तर्क सहित लिखिए।

पाठेतर सक्रियता

- आप गर्मी की चिलचिलाती धूप में कभी सफ़र करें तो दूर सड़क पर आपको पानी जैसा दिखाई देगा पर पास पहुँचने पर वहाँ कुछ नहीं होता। अपने जीवन में भी कभी-कभी हम सोचते कुछ हैं, दिखता कुछ है लेकिन वास्तविकता कुछ और होती है। आपके जीवन में घटे ऐसे किसी अनुभव को अपने प्रिय मित्र को पत्र लिखकर अभिव्यक्त कीजिए।
- कवि गिरिजाकुमार माथुर की 'पंद्रह अगस्त' कविता खोजकर पढ़िए और उस पर चर्चा कीजिए।

शब्द-संपदा

छाया	-	भ्रम, दुविधा
सुरंग	-	रंग-बिरंगी
छवियों की चित्रगंध	-	चित्र की स्मृति के साथ उसके आसपास की गंध का अनुभव
यामिनी	-	तारों भरी चाँदनी रात
कुंतल	-	लंबे केश
सरमाया	-	पूँजी
प्रभुता का शरण-बिंब	-	बड़प्पन का अहसास
दुविधाहत साहस	-	साहस होते हुए भी दुविधाग्रस्त रहना

यह भी जानें

प्रसिद्ध गीत 'We shall overcome' का हिंदी अनुवाद 'होंगे कामयाब' शीर्षक से कवि गिरिजाकुमार माथुर ने किया है।

ऋतुराज का जन्म सन् 1940 में भरतपुर में हुआ। राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से उन्होंने अंग्रेज़ी में एम.ए. किया। चालीस वर्षों तक अंग्रेज़ी साहित्य के अध्यापन के बाद अब सेवानिवृत्ति लेकर वे जयपुर में रहते हैं। उनके अब तक आठ कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें **एक मरणधर्मा और अन्य**, **पुल पर पानी**, **सुरत निरत** और **लीला मुखारविंद** प्रमुख हैं। उन्हें सोमदत्त, परिमल सम्मान, मीरा पुरस्कार, पहल सम्मान तथा बिहारी पुरस्कार मिल चुके हैं।

मुख्यधारा से अलग समाज के हाशिए के लोगों की चिंताओं को ऋतुराज ने अपने लेखन का विषय बनाया है। उनकी कविताओं में दैनिक जीवन के अनुभव का यथार्थ है और वे अपने आसपास रोज़मर्रा में घटित होने वाले सामाजिक शोषण और विडंबनाओं पर निगाह डालते हैं। यही कारण है कि उनकी भाषा अपने परिवेश और लोक जीवन से जुड़ी हुई है।

8

ऋतुराज

कन्यादान *कविता में माँ बेटी को स्त्री के परंपरागत 'आदर्श' रूप से हटकर सीख दे रही है। कवि का मानना है कि समाज-व्यवस्था द्वारा स्त्रियों के लिए आचरण संबंधी जो प्रतिमान गढ़ लिए जाते हैं वे आदर्श के मुलम्मे में बंधन होते हैं। 'कोमलता' के गौरव में 'कमज़ोरी' का उपहास छिपा रहता है। लड़की जैसा न दिखाई देने में इसी आदर्शीकरण का प्रतिकार है। बेटी माँ के सबसे निकट और उसके सुख-दुख की साथी होती है। इसी कारण उसे अंतिम पूँजी कहा गया है। कविता में कोरी भावुकता नहीं बल्कि माँ के संचित अनुभवों की पीड़ा की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। इस छोटी-सी कविता में स्त्री जीवन के प्रति ऋतुराज जी की गहरी संवेदनशीलता अभिव्यक्त हुई है।*

कन्यादान

कितना प्रामाणिक था उसका दुख
लड़की को दान में देते वक्त
जैसे वही उसकी अंतिम पूँजी हो

लड़की अभी सयानी नहीं थी
अभी इतनी भोली सरल थी
कि उसे सुख का आभास तो होता था
लेकिन दुख बाँचना नहीं आता था
पाठिका थी वह धुँधले प्रकाश की
कुछ तुकों और कुछ लयबद्ध पंक्तियों की

माँ ने कहा पानी में झाँककर
अपने चेहरे पर मत रीझना
आग रोटियाँ सेंकने के लिए है
जलने के लिए नहीं
वस्त्र और आभूषण शाब्दिक भ्रमों की तरह
बंधन हैं स्त्री जीवन के

माँ ने कहा लड़की होना
पर लड़की जैसी दिखाई मत देना।

प्रश्न-अभ्यास

1. आपके विचार से माँ ने ऐसा क्यों कहा कि लड़की होना पर लड़की जैसी मत दिखाई देना?
2. 'आग रोटियाँ सेंकने के लिए है
   जलने के लिए नहीं'
   (क) इन पंक्तियों में समाज में स्त्री की किस स्थिति की ओर संकेत किया गया है?
   (ख) माँ ने बेटी को सचेत करना क्यों ज़रूरी समझा?
3. 'पाठिका थी वह धुँधले प्रकाश की
   कुछ तुकों और कुछ लयबद्ध पंक्तियों की'
   इन पंक्तियों को पढ़कर लड़की की जो छवि आपके सामने उभरकर आ रही है उसे शब्दबद्ध कीजिए।
4. माँ को अपनी बेटी 'अंतिम पूँजी' क्यों लग रही थी?
5. माँ ने बेटी को क्या-क्या सीख दी?

रचना और अभिव्यक्ति

6. आपकी दृष्टि में कन्या के साथ दान की बात करना कहाँ तक उचित है?

पाठेतर सक्रियता

- 'स्त्री को सौंदर्य का प्रतिमान बना दिया जाना ही उसका बंधन बन जाता है'–इस विषय पर कक्षा में चर्चा कीजिए।

  यहाँ अफगानी कवयित्री **मीना किश्वर कमाल** की कविता की कुछ पंक्तियाँ दी जा रही हैं। क्या आपको कन्यादान कविता से इसका कोई संबंध दिखाई देता है?

मैं लौटूँगी नहीं

मैं एक जगी हुई स्त्री हूँ
मैंने अपनी राह देख ली है
अब मैं लौटूँगी नहीं
मैंने ज्ञान के बंद दरवाज़े खोल दिए हैं
सोने के गहने तोड़कर फेंक दिए हैं
भाइयो! मैं अब वह नहीं हूँ जो पहले थी
मैं एक जगी हुई स्त्री हूँ
मैंने अपनी राह देख ली है।
अब मैं लौटूँगी नहीं

9
मंगलेश डबराल

मंगलेश **डबराल** का जन्म सन् 1948 में टिहरी गढ़वाल (उत्तरांचल) के काफलपानी गाँव में हुआ और शिक्षा-दीक्षा हुई देहरादून में। दिल्ली आकर **हिंदी पेट्रियट**, **प्रतिपक्ष** और **आसपास** में काम करने के बाद वे भोपाल में भारत भवन से प्रकाशित होने वाले **पूर्वग्रह** में सहायक संपादक हुए। इलाहाबाद और लखनऊ से प्रकाशित **अमृत प्रभात** में भी कुछ दिन नौकरी की। सन् 1983 में **जनसत्ता** अखबार में साहित्य संपादक का पद सँभाला। कुछ समय **सहारा समय** में संपादन कार्य करने के बाद आजकल वे नेशनल बुक ट्रस्ट से जुड़े हैं।

मंगलेश डबराल के चार कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं–**पहाड़ पर लालटेन, घर का रास्ता, हम जो देखते हैं** और **आवाज़ भी एक जगह है।** साहित्य अकादेमी पुरस्कार, पहल सम्मान से सम्मानित मंगलेश जी की ख्याति अनुवादक के रूप में भी है। मंगलेश जी की कविताओं के भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, रूसी, जर्मन, स्पानी, पोल्स्की और बल्गारी भाषाओं में भी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। कविता के अतिरिक्त वे साहित्य, सिनेमा, संचार माध्यम और संस्कृति के सवालों पर नियमित लेखन भी करते हैं। मंगलेश की कविताओं में सामंती बोध एव पूँजीवादी छल-छद्म दोनों का प्रतिकार है। वे यह प्रतिकार किसी शोर-शराबे के साथ नहीं बल्कि प्रतिपक्ष में एक सुंदर सपना रचकर करते हैं। उनका सौंदर्यबोध सूक्ष्म है और भाषा पारदर्शी।

संगतकार *कविता गायन में मुख्य गायक का साथ देनेवाले संगतकार की भूमिका के महत्त्व पर विचार करती है। दृश्य माध्यम की प्रस्तुतियों; जैसे–नाटक, फ़िल्म, संगीत, नृत्य के बारे में तो यह सही है ही; हम समाज और इतिहास में भी ऐसे अनेक प्रसंगों को देख सकते हैं जहाँ नायक की सफलता में अनेक लोगों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। कविता हममें यह संवेदनशीलता विकसित करती है कि उनमें से प्रत्येक का अपना-अपना महत्त्व है और उनका सामने न आना उनकी कमज़ोरी नहीं मानवीयता है। संगीत की सूक्ष्म समझ और कविता की दृश्यात्मकता इस कविता को ऐसी गति देती है मानो हम इसे अपने सामने घटित होता देख रहे हों।*

संगतकार

मुख्य गायक के चट्टान जैसे भारी स्वर का साथ देती
वह आवाज़ सुंदर कमज़ोर काँपती हुई थी
वह मुख्य गायक का छोटा भाई है
या उसका शिष्य
या पैदल चलकर सीखने आने वाला दूर का कोई रिश्तेदार
मुख्य गायक की गरज़ में
वह अपनी गूँज मिलाता आया है प्राचीन काल से
गायक जब अंतरे की जटिल तानों के जंगल में
खो चुका होता है
या अपने ही सरगम को लाँघकर
चला जाता है भटकता हुआ एक अनहद में
तब संगतकार ही स्थायी को सँभाले रहता है
जैसे समेटता हो मुख्य गायक का पीछे छूटा हुआ सामान
जैसे उसे याद दिलाता हो उसका बचपन
जब वह नौसिखिया था
तारसप्तक में जब बैठने लगता है उसका गला
प्रेरणा साथ छोड़ती हुई उत्साह अस्त होता हुआ
आवाज़ से राख जैसा कुछ गिरता हुआ
तभी मुख्य गायक को ढाँढ़स बँधाता
कहीं से चला आता है संगतकार का स्वर
कभी-कभी वह यों ही दे देता है उसका साथ
यह बताने के लिए कि वह अकेला नहीं है
और यह कि फिर से गाया जा सकता है

गाया जा चुका राग
और उसकी आवाज़ में जो एक हिचक साफ़ सुनाई देती है
या अपने स्वर को ऊँचा न उठाने की जो कोशिश है
उसे विफलता नहीं
उसकी मनुष्यता समझा जाना चाहिए।

प्रश्न-अभ्यास

1. संगतकार के माध्यम से कवि किस प्रकार के व्यक्तियों की ओर संकेत करना चाह रहा है?
2. संगतकार जैसे व्यक्ति संगीत के अलावा और किन-किन क्षेत्रों में दिखाई देते हैं?
3. संगतकार किन-किन रूपों में मुख्य गायक-गायिकाओं की मदद करते हैं?
4. भाव स्पष्ट कीजिए–

   और उसकी आवाज़ में जो एक हिचक साफ़ सुनाई देती है
   या अपने स्वर को ऊँचा न उठाने की जो कोशिश है
   उसे विफलता नहीं
   उसकी मनुष्यता समझा जाना चाहिए।
5. किसी भी क्षेत्र में प्रसिद्धि पाने वाले लोगों को अनेक लोग तरह-तरह से अपना योगदान देते हैं। कोई एक उदाहरण देकर इस कथन पर अपने विचार लिखिए।
6. कभी-कभी तारसप्तक की ऊँचाई पर पहुँचकर मुख्य गायक का स्वर बिखरता नज़र आता है उस समय संगतकार उसे बिखरने से बचा लेता है। इस कथन के आलोक में संगतकार की विशेष भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
7. सफलता के चरम शिखर पर पहुँचने के दौरान यदि व्यक्ति लड़खड़ाता है तब उसे सहयोगी किस तरह सँभालते हैं?

रचना और अभिव्यक्ति

8. कल्पना कीजिए कि आपको किसी संगीत या नृत्य समारोह का कार्यक्रम प्रस्तुत करना है लेकिन आपके सहयोगी कलाकार किसी कारणवश नहीं पहुँच पाएँ–

   (क) ऐसे में अपनी स्थिति का वर्णन कीजिए।

   (ख) ऐसी परिस्थिति का आप कैसे सामना करेंगे?

9. आपके विद्यालय में मनाए जाने वाले सांस्कृतिक समारोह में मंच के पीछे काम करने वाले सहयोगियों की भूमिका पर एक अनुच्छेद लिखिए।
10. किसी भी क्षेत्र में संगतकार की पंक्ति वाले लोग प्रतिभावान होते हुए भी मुख्य या शीर्ष स्थान पर क्यों नहीं पहुँच पाते होंगे?

पाठेतर सक्रियता

- आप फ़िल्में तो देखते ही होंगे। अपनी पसंद की किसी एक फ़िल्म के आधार पर लिखिए कि उस फ़िल्म की सफलता में अभिनय करने वाले कलाकारों के अतिरिक्त और किन-किन लोगों का योगदान रहा।
- आपके विद्यालय में किसी प्रसिद्ध गायिका की गीत प्रस्तुति का आयोजन है–
  (क) इस संबंध पर सूचना पट्ट के लिए एक नोटिस तैयार कीजिए।
  (ख) गायिका व उसके संगतकारों का परिचय देने के लिए आलेख (स्क्रिप्ट) तैयार कीजिए।

शब्द-संपदा

संगतकार	–	मुख्य गायक के साथ गायन करने वाला या कोई वाद्य बजाने वाला कलाकार, सहयोगी
गरज	–	ऊँची गंभीर आवाज़
अंतरा	–	स्थायी या टेक को छोड़कर गीत का चरण
जटिल	–	कठिन
तान	–	संगीत में स्वर का विस्तार
नौसिखिया	–	जिसने अभी सीखना आरंभ किया हो
राख जैसा कुछ गिरता हुआ	–	बुझता हुआ स्वर
ढाँढ़स बँधाना	–	तसल्ली देना, सांत्वना देना

यह भी जानें

सरगम – संगीत के लिए सात स्वर तय किए गए हैं। वे हैं–षडज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम्, धैवत और निषाद। इन्हीं नामों के पहले अक्षर लेकर इन्हें सा, रे, ग, म, प, ध और नि कहा गया है।

सप्तक – सप्तक का अर्थ है सात का समूह। सात शुद्ध स्वर हैं इसीलिए यह नाम पड़ा। लेकिन ध्वनि की ऊँचाई और निचाई के आधार पर संगीत में तीन तरह के सप्तक माने गए हैं। यदि साधारण ध्वनि है तो उसे 'मध्य सप्तक' कहेंगे और ध्वनि मध्य सप्तक से ऊपर है तो उसे 'तार सप्तक' कहेंगे तथा ध्वनि मध्य सप्तक से नीचे है तो उसे 'मंद्र सप्तक' कहते हैं।

गद्य खंड

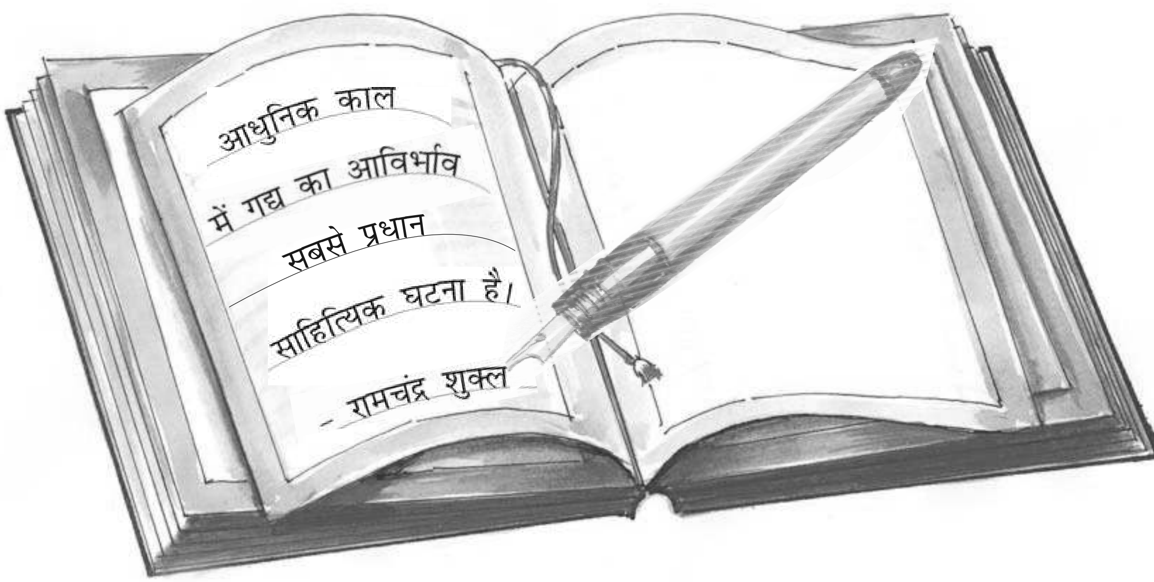

विद्यार्थी अपने नियत अध्ययन को पूरा कर लेने के बाद जो समय बचा सके उसे अपने देश तथा धर्म के इतिहास, अपने पूर्वजों के चरित्र, अपने देश की विगत और वर्तमान अवस्था, दूसरे देशों के इतिहास, समाचार-पत्र, पत्रिकाओं को पढ़ने और विचारने में लगाएँ। अपने अध्ययन को हानि न पहुँचाकर समय मिले तो सभा समाजों में विद्वानों के व्याख्यानों को भी सुनें।

–मदनमोहन मालवीय

जो काम अपना उद्देश्य आप होते हैं और अपने से बाहर कोई स्वार्थ नहीं रखते, उन्हें खेल कहते हैं। अध्यापक का काम अक्सर अपना इनाम आप होता है। वह बच्चों की भाँति ज़िंदगी जीता हुआ बच्चों के साथ एकाकार हो जाता है। एक अच्छे नाटककार या इतिहासकार की भाँति वह एक छोटी-सी बात से, एक साधारण-सी क्रिया से, चेहरे के रंग से और आँखों को देखकर पूरे आदमी की वास्तविकता का पता लगा लेता है। वह अपने विवेक और सूझबूझ से बच्चों के हृदय, बुद्धि तथा आत्मा के छिपे हुए तथ्यों को समझ लेता है। वह कभी हँसकर, कभी तारीफ़ करके, कभी नरमी से, कभी सख्ती से, कभी उकसाकर, कभी आलोचना करके बच्चे की वास्तविकता को समझ कर उसका मार्गदर्शन करता है।

–ज़ाकिर हुसैन

10

स्वयं प्रकाश

स्वयं **प्रकाश** का जन्म सन् 1947 में इंदौर (मध्यप्रदेश) में हुआ। मैकेनिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई करके एक औद्योगिक प्रतिष्ठान में नौकरी करने वाले स्वयं प्रकाश का बचपन और नौकरी का बड़ा हिस्सा राजस्थान में बीता। फ़िलहाल स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद वे भोपाल में रहते हैं और **वसुधा** पत्रिका के संपादन से जुड़े हैं।

आठवें दशक में उभरे स्वयं प्रकाश आज समकालीन कहानी के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनके तेरह कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें **सूरज कब निकलेगा**, **आएँगे अच्छे दिन भी**, **आदमी जात का आदमी** और **संधान** उल्लेखनीय हैं। उनके **बीच में विनय** और **ईंधन** उपन्यास चर्चित रहे हैं। उन्हें पहल सम्मान, बनमाली पुरस्कार, राजस्थान साहित्य अकादेमी पुरस्कार आदि पुरस्कारों से पुरस्कृत किया जा चुका है।

मध्यवर्गीय जीवन के कुशल चितेरे स्वयं प्रकाश की कहानियों में वर्ग-शोषण के विरुद्ध चेतना है तो हमारे सामाजिक जीवन में जाति, संप्रदाय और लिंग के आधार पर हो रहे भेदभाव के खिलाफ़ प्रतिकार का स्वर भी है। रोचक किस्सागोई शैली में लिखी गई उनकी कहानियाँ हिंदी की वाचिक परंपरा को समृद्ध करती हैं।

चारों ओर सीमाओं से घिरे भूभाग का नाम ही देश नहीं होता। देश बनता है उसमें रहने वाले सभी नागरिकों, नदियों, पहाड़ों, पेड़-पौधों, वनस्पतियों, पशु-पक्षियों से और इन सबसे प्रेम करने तथा इनकी समृद्धि के लिए प्रयास करने का नाम देशभक्ति है। ***नेताजी का चश्मा*** *कहानी कैप्टन चश्मे वाले के माध्यम से देश के करोड़ों नागरिकों के योगदान को रेखांकित करती है जो इस देश के निर्माण में अपने-अपने तरीके से सहयोग करते हैं। कहानी यह कहती है कि बड़े ही नहीं बच्चे भी इसमें शामिल हैं।*

नेताजी का चश्मा

हालदार साहब को हर पंद्रहवें दिन कंपनी के काम के सिलसिले में उस कस्बे से गुज़रना पड़ता था। कस्बा बहुत बड़ा नहीं था। जिसे पक्का मकान कहा जा सके वैसे कुछ ही मकान और जिसे बाज़ार कहा जा सके वैसा एक ही बाज़ार था। कस्बे में एक लड़कों का स्कूल, एक लड़कियों का स्कूल, एक सीमेंट का छोटा-सा कारखाना, दो ओपन एयर सिनेमाघर और एक ठो नगरपालिका भी थी। नगरपालिका थी तो कुछ-न-कुछ करती भी रहती थी। कभी कोई सड़क पक्की करवा दी, कभी कुछ पेशाबघर बनवा दिए, कभी कबूतरों की छतरी बनवा दी तो कभी कवि सम्मेलन करवा दिया। इसी नगरपालिका के किसी उत्साही बोर्ड या प्रशासनिक अधिकारी ने एक बार 'शहर' के मुख्य बाज़ार के मुख्य चौराहे पर नेताजी सुभाषचंद्र बोस की एक संगमरमर की प्रतिमा लगवा दी। यह कहानी उसी प्रतिमा के बारे में है, बल्कि उसके भी एक छोटे-से हिस्से के बारे में।

पूरी बात तो अब पता नहीं, लेकिन लगता है कि देश के अच्छे मूर्तिकारों की जानकारी नहीं होने और अच्छी मूर्ति की लागत अनुमान और उपलब्ध बजट से कहीं बहुत ज़्यादा होने के कारण काफ़ी समय ऊहापोह और चिट्ठी-पत्री में बरबाद हुआ होगा और बोर्ड की शासनावधि समाप्त होने की घड़ियों में किसी स्थानीय कलाकार को ही अवसर देने का निर्णय किया गया होगा, और अंत में कस्बे के इकलौते हाई स्कूल के इकलौते ड्राइंग मास्टर—मान लीजिए मोतीलाल जी—को ही यह काम सौंप दिया गया होगा, जो महीने-भर में मूर्ति बनाकर 'पटक देने' का विश्वास दिला रहे थे।

जैसा कि कहा जा चुका है, मूर्ति संगमरमर की थी। टोपी की नोक से कोट के दूसरे बटन तक कोई दो फुट ऊँची। जिसे कहते हैं बस्ट। और सुंदर थी। नेताजी सुंदर लग रहे थे। कुछ-कुछ मासूम और कमसिन। फ़ौजी वर्दी में। मूर्ति को देखते ही 'दिल्ली चलो' और 'तुम मुझे खून दो...' वगैरह याद आने लगते थे। इस दृष्टि से यह सफल और सराहनीय प्रयास था। केवल एक चीज़ की कसर थी जो देखते ही खटकती थी। नेताजी की आँखों पर चश्मा नहीं था। यानी चश्मा तो था, लेकिन संगमरमर का नहीं था। एक सामान्य और सचमुच के

चश्मे का चौड़ा काला फ्रेम मूर्ति को पहना दिया गया था। हालदार साहब जब पहली बार इस कस्बे से गुज़रे और चौराहे पर पान खाने रुके तभी उन्होंने इसे लक्षित किया और उनके चेहरे पर एक कौतुकभरी मुसकान फैल गई। वाह भई! यह आइडिया भी ठीक है। मूर्ति पत्थर की, लेकिन चश्मा रियल!

जीप कस्बा छोड़कर आगे बढ़ गई तब भी हालदार साहब इस मूर्ति के बारे में ही सोचते रहे, और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कुल मिलाकर कस्बे के नागरिकों का यह प्रयास सराहनीय ही कहा जाना चाहिए। महत्त्व मूर्ति के रंग-रूप या कद का नहीं, उस भावना का है वरना तो देश-भक्ति भी आजकल मज़ाक की चीज़ होती जा रही है।

दूसरी बार जब हालदार साहब उधर से गुज़रे तो उन्हें मूर्ति में कुछ अंतर दिखाई दिया। ध्यान से देखा तो पाया कि चश्मा दूसरा है। पहले मोटे फ्रेमवाला चौकोर चश्मा था, अब तार के फ्रेमवाला गोल चश्मा है। हालदार साहब का कौतुक और बढ़ा। वाह भई! क्या आइडिया है। मूर्ति कपड़े नहीं बदल सकती लेकिन चश्मा तो बदल ही सकती है।

तीसरी बार फिर नया चश्मा था।

हालदार साहब की आदत पड़ गई, हर बार कस्बे से गुज़रते समय चौराहे पर रुकना, पान खाना और मूर्ति को ध्यान से देखना। एक बार जब कौतूहल दुर्दमनीय हो उठा तो पानवाले से ही पूछ लिया, क्यों भई! क्या बात है? यह तुम्हारे नेताजी का चश्मा हर बार बदल कैसे जाता है?

पानवाले के खुद के मुँह में पान ठुँसा हुआ था। वह एक काला मोटा और खुशमिज़ाज़ आदमी था। हालदार साहब का प्रश्न सुनकर वह आँखों-ही-आँखों में हँसा। उसकी तोंद थिरकी। पीछे घूमकर उसने दुकान के नीचे पान थूका और अपनी लाल-काली बत्तीसी दिखाकर बोला, कैप्टन चश्मेवाला करता है।

क्या करता है? हालदार साहब कुछ समझ नहीं पाए।

चश्मा चेंज कर देता है। पानवाले ने समझाया।

क्या मतलब? क्यों चेंज कर देता है? हालदार साहब अब भी नहीं समझ पाए।

कोई गिराक आ गया समझो। उसको चौड़े चौखट चाहिए। तो कैप्टन किदर से लाएगा? तो उसको मूर्तिवाला दे दिया। उदर दूसरा बिठा दिया।

अब हालदार साहब को बात कुछ-कुछ समझ में आई। एक चश्मेवाला है जिसका नाम कैप्टन है। उसे नेताजी की बगैर चश्मेवाली मूर्ति बुरी लगती है। बल्कि आहत करती है, मानो चश्मे के बगैर नेताजी को असुविधा हो रही हो। इसलिए वह अपनी छोटी-सी दुकान में उपलब्ध गिने-चुने फ्रेमों में से एक नेताजी की मूर्ति पर फिट कर देता है। लेकिन जब कोई ग्राहक आता है और उसे वैसे ही फ्रेम की दरकार होती है जैसा मूर्ति पर लगा है तो कैप्टन

चश्मेवाला मूर्ति पर लगा फ्रेम–संभवत: नेताजी से क्षमा माँगते हुए–लाकर ग्राहक को दे देता है और बाद में नेताजी को दूसरा फ्रेम लौटा देता है। वाह! भई खूब! क्या आइडिया है।

लेकिन भाई! एक बात अभी भी समझ में नहीं आई। हालदार साहब ने पानवाले से फिर पूछा, नेताजी का ओरिजिनल चश्मा कहाँ गया?

पानवाला दूसरा पान मुँह में ठूँस चुका था। दोपहर का समय था, 'दुकान' पर भीड़-भाड़ अधिक नहीं थी। वह फिर आँखों-ही-आँखों में हँसा। उसकी तोंद थिरकी। कत्थे की डंडी फेंक, पीछे मुड़कर उसने नीचे पीक थूकी और मुसकराता हुआ बोला, मास्टर बनाना भूल गया।

पानवाले के लिए यह एक मज़ेदार बात थी लेकिन हालदार साहब के लिए चकित और द्रवित करने वाली। यानी वह ठीक ही सोच रहे थे। मूर्ति के नीचे लिखा 'मूर्तिकार मास्टर मोतीलाल' वाकई कस्बे का अध्यापक था। बेचारे ने महीने-भर में मूर्ति बनाकर पटक देने का वादा कर दिया होगा। बना भी ली होगी लेकिन पत्थर में पारदर्शी चश्मा कैसे बनाया जाए–काँचवाला–यह तय नहीं कर पाया होगा। या कोशिश की होगी और असफल रहा होगा। या बनाते-बनाते 'कुछ और बारीकी' के चक्कर में चश्मा टूट गया होगा। या पत्थर का चश्मा अलग से बनाकर फिट किया होगा और वह निकल गया होगा। उफ़...!

हालदार साहब को यह सब कुछ बड़ा विचित्र और कौतुकभरा लग रहा था। इन्हीं खयालों में खोए-खोए पान के पैसे चुकाकर, चश्मेवाले की देश-भक्ति के समक्ष नतमस्तक होते हुए वह जीप की तरफ़ चले, फिर रुके, पीछे मुड़े और पानवाले के पास जाकर पूछा, क्या कैप्टन चश्मेवाला नेताजी का साथी है? या आज़ाद हिंद फ़ौज का भूतपूर्व सिपाही?

पानवाला नया पान खा रहा था। पान पकड़े अपने हाथ को मुँह से डेढ़ इंच दूर रोककर उसने हालदार साहब को ध्यान से देखा, फिर अपनी लाल-काली बत्तीसी दिखाई और मुसकराकर बोला-नहीं साब! वो लँगड़ा क्या जाएगा फ़ौज में। पागल है पागल! वो देखो, वो आ रहा है। आप उसी से बात कर लो। फ़ोटो-वोटो छपवा दो उसका कहीं।

हालदार साहब को पानवाले द्वारा एक देशभक्त का इस तरह मज़ाक उड़ाया जाना अच्छा नहीं लगा। मुड़कर देखा तो अवाक् रह गए। एक बेहद बूढ़ा मरियल-सा लँगड़ा आदमी सिर पर गांधी टोपी और आँखों पर काला चश्मा लगाए एक हाथ में एक छोटी-सी संदूकची और दूसरे हाथ में एक बाँस पर टँगे बहुत-से चश्मे लिए अभी-अभी एक गली से निकला था और अब एक बंद दुकान के सहारे अपना बाँस टिका रहा था। तो इस बेचारे की दुकान भी नहीं! फेरी लगाता है! हालदार साहब चक्कर में पड़ गए। पूछना चाहते थे, इसे कैप्टन क्यों कहते हैं? क्या यही इसका वास्तविक नाम है? लेकिन पानवाले ने साफ़ बता दिया था कि अब वह इस बारे में और बात करने को तैयार नहीं। ड्राइवर भी बेचैन हो रहा था। काम भी

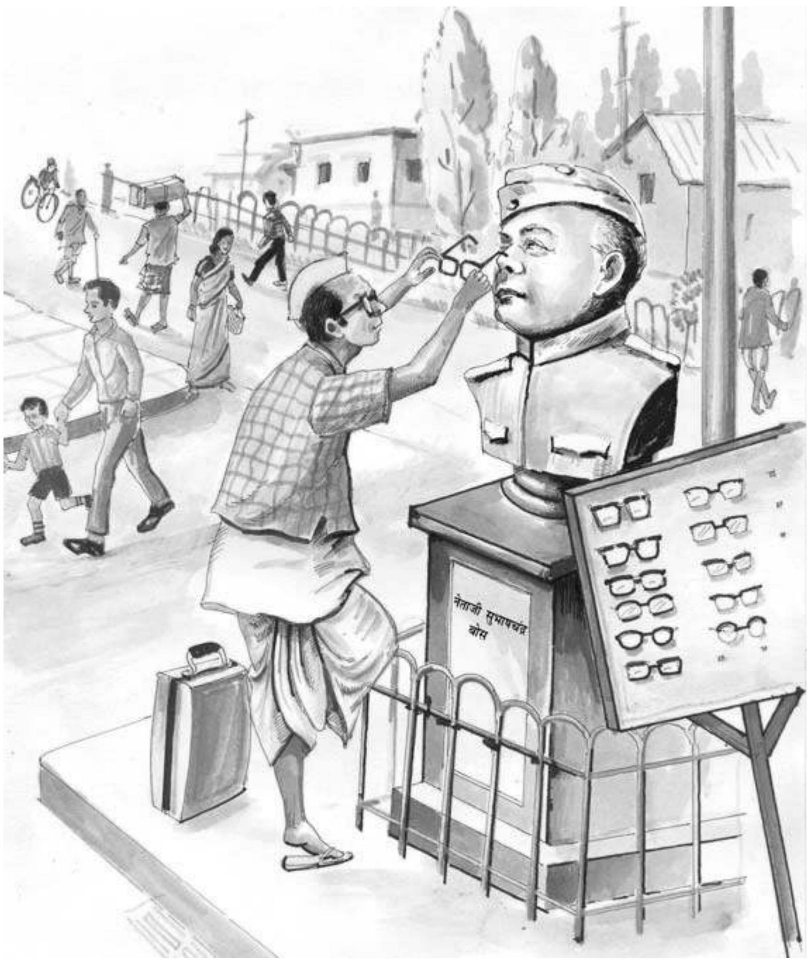

था। हालदार साहब जीप में बैठकर चले गए।

दो साल तक हालदार साहब अपने काम के सिलसिले में उस कस्बे से गुज़रते रहे और नेताजी की मूर्ति में बदलते हुए चश्मों को देखते रहे। कभी गोल चश्मा होता, तो कभी चौकोर, कभी लाल, कभी काला, कभी धूप का चश्मा, कभी बड़े काँचों वाला गोगो चश्मा. ..पर कोई-न-कोई चश्मा होता ज़रूर...उस धूलभरी यात्रा में हालदार साहब को कौतुक और प्रफुल्लता के कुछ क्षण देने के लिए।

फिर एक बार ऐसा हुआ कि मूर्ति के चेहरे पर कोई भी, कैसा भी चश्मा नहीं था। उस दिन पान की दुकान भी बंद थी। चौराहे की अधिकांश दुकानें बंद थीं।

अगली बार भी मूर्ति की आँखों पर चश्मा नहीं था। हालदार साहब ने पान खाया और धीरे से पानवाले से पूछा—क्यों भई, क्या बात है? आज तुम्हारे नेताजी की आँखों पर चश्मा नहीं है?

पानवाला उदास हो गया। उसने पीछे मुड़कर मुँह का पान नीचे थूका और सिर झुकाकर अपनी धोती के सिरे से आँखें पोंछता हुआ बोला – साहब! कैप्टन मर गया।

और कुछ नहीं पूछ पाए हालदार साहब। कुछ पल चुपचाप खड़े रहे, फिर पान के पैसे चुकाकर जीप में आ बैठे और रवाना हो गए।

बार-बार सोचते, क्या होगा उस कौम का जो अपने देश की खातिर घर-गृहस्थी-जवानी-ज़िंदगी सब कुछ होम देनेवालों पर भी हँसती है और अपने लिए बिकने के मौके ढूँढ़ती है। दुखी हो गए। पंद्रह दिन बाद फिर उसी कस्बे से गुज़रे। कस्बे में घुसने से पहले ही खयाल आया कि

कस्बे की हृदयस्थली में सुभाष की प्रतिमा अवश्य ही प्रतिष्ठापित होगी, लेकिन सुभाष की आँखों पर चश्मा नहीं होगा।...क्योंकि मास्टर बनाना भूल गया।...और कैप्टन मर गया। सोचा, आज वहाँ रुकेंगे नहीं, पान भी नहीं खाएँगे, मूर्ति की तरफ़ देखेंगे भी नहीं, सीधे निकल जाएँगे। ड्राइवर से कह दिया, चौराहे पर रुकना नहीं, आज बहुत काम है, पान आगे कहीं खा लेंगे।

लेकिन आदत से मजबूर आँखें चौराहा आते ही मूर्ति की तरफ़ उठ गईं। कुछ ऐसा देखा कि चीखे, रोको! जीप स्पीड में थी, ड्राइवर ने ज़ोर से ब्रेक मारे। रास्ता चलते लोग देखने लगे। जीप रुकते-न-रुकते हालदार साहब जीप से कूदकर तेज़-तेज़ कदमों से मूर्ति की तरफ़ लपके और उसके ठीक सामने जाकर अटेंशन में खड़े हो गए।

मूर्ति की आँखों पर सरकंडे से बना छोटा-सा चश्मा रखा हुआ था, जैसा बच्चे बना लेते हैं। हालदार साहब भावुक हैं। इतनी-सी बात पर उनकी आँखें भर आईं।

प्रश्न-अभ्यास

1. सेनानी न होते हुए भी चश्मेवाले को लोग कैप्टन क्यों कहते थे?
2. हालदार साहब ने ड्राइवर को पहले चौराहे पर गाड़ी रोकने के लिए मना किया था लेकिन बाद में तुरंत रोकने को कहा–
   (क) हालदार साहब पहले मायूस क्यों हो गए थे?
   (ख) मूर्ति पर सरकंडे का चश्मा क्या उम्मीद जगाता है?
   (ग) हालदार साहब इतनी-सी बात पर भावुक क्यों हो उठे?
3. आशय स्पष्ट कीजिए–
   "बार-बार सोचते, क्या होगा उस कौम का जो अपने देश की खातिर घर-गृहस्थी-जवानी-ज़िंदगी सब कुछ होम देनेवालों पर भी हँसती है और अपने लिए बिकने के मौके ढूँढ़ती है।"
4. पानवाले का एक रेखाचित्र प्रस्तुत कीजिए।
5. "वो लँगड़ा क्या जाएगा फ़ौज में। पागल है पागल!"
   कैप्टन के प्रति पानवाले की इस टिप्पणी पर अपनी प्रतिक्रिया लिखिए।

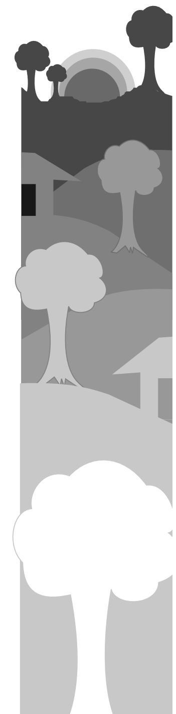

रचना और अभिव्यक्ति

6. निम्नलिखित वाक्य पात्रों की कौन-सी विशेषता की ओर संकेत करते हैं–
   (क) हालदार साहब हमेशा चौराहे पर रुकते और नेताजी को निहारते।
   (ख) पानवाला उदास हो गया। उसने पीछे मुड़कर मुँह का पान नीचे थूका और सिर झुकाकर अपनी धोती के सिरे से आँखें पोंछता हुआ बोला–साहब! कैप्टन मर गया।
   (ग) कैप्टन बार-बार मूर्ति पर चश्मा लगा देता था।
7. जब तक हालदार साहब ने कैप्टन को साक्षात् देखा नहीं था तब तक उनके मानस पटल पर उसका कौन-सा चित्र रहा होगा, अपनी कल्पना से लिखिए।
8. कस्बों, शहरों, महानगरों के चौराहों पर किसी न किसी क्षेत्र के प्रसिद्ध व्यक्ति की मूर्ति लगाने का प्रचलन-सा हो गया है–
   (क) इस तरह की मूर्ति लगाने के क्या उद्देश्य हो सकते हैं?
   (ख) आप अपने इलाके के चौराहे पर किस व्यक्ति की मूर्ति स्थापित करवाना चाहेंगे और क्यों?
   (ग) उस मूर्ति के प्रति आपके एवं दूसरे लोगों के क्या उत्तरदायित्व होने चाहिए?

9. सीमा पर तैनात फ़ौजी ही देश-प्रेम का परिचय नहीं देते। हम सभी अपने दैनिक कार्यों में किसी न किसी रूप में देश-प्रेम प्रकट करते हैं; जैसे–सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान न पहुँचाना, पर्यावरण संरक्षण आदि। अपने जीवन-जगत से जुड़े ऐसे और कार्यों का उल्लेख कीजिए और उन पर अमल भी कीजिए।
10. निम्नलिखित पंक्तियों में स्थानीय बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, आप इन पंक्तियों को मानक हिंदी में लिखिए–

    कोई गिराक आ गया समझो। उसको चौड़े चौखट चाहिए। तो कैप्टन किदर से लाएगा? तो उसको मूर्तिवाला दे दिया। उदर दूसरा बिठा दिया।
11. 'भई खूब! क्या आइडिया है।' इस वाक्य को ध्यान में रखते हुए बताइए कि एक भाषा में दूसरी भाषा के शब्दों के आने से क्या लाभ होते हैं?

भाषा-अध्ययन

12. निम्नलिखित वाक्यों से निपात छाँटिए और उनसे नए वाक्य बनाइए–
    (क) नगरपालिका थी तो कुछ न कुछ करती भी रहती थी।
    (ख) किसी स्थानीय कलाकार को ही अवसर देने का निर्णय किया गया होगा।
    (ग) यानी चश्मा तो था लेकिन संगमरमर का नहीं था।
    (घ) हालदार साहब अब भी नहीं समझ पाए।
    (ङ) दो साल तक हालदार साहब अपने काम के सिलसिले में उस कस्बे से गुज़रते रहे।

13. निम्नलिखित वाक्यों को कर्मवाच्य में बदलिए–

(क) वह अपनी छोटी-सी दुकान में उपलब्ध गिने-चुने फ्रेमों में से नेताजी की मूर्ति पर फिट कर देता है।

(ख) पानवाला नया पान खा रहा था।

(ग) पानवाले ने साफ़ बता दिया था।

(घ) ड्राइवर ने ज़ोर से ब्रेक मारे।

(ङ) नेताजी ने देश के लिए अपना सब कुछ त्याग दिया।

(च) हालदार साहब ने चश्मेवाले की देशभक्ति का सम्मान किया।

14. नीचे लिखे वाक्यों को भाववाच्य में बदलिए–

जैसे–अब चलते हैं। –अब चला जाए।

(क) माँ बैठ नहीं सकती।

(ख) मैं देख नहीं सकती।

(ग) चलो, अब सोते हैं।

(घ) माँ रो भी नहीं सकती।

पाठेतर सक्रियता

- लेखक का अनुमान है कि नेताजी की मूर्ति बनाने का काम मजबूरी में ही स्थानीय कलाकार को दिया गया–

    (क) मूर्ति बनाने का काम मिलने पर कलाकार के क्या भाव रहे होंगे?

    (ख) हम अपने इलाके के शिल्पकार, संगीतकार, चित्रकार एवं दूसरे कलाकारों के काम को कैसे महत्त्व और प्रोत्साहन दे सकते हैं, लिखिए।

- आपके विद्यालय में शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थी हैं। उनके लिए विद्यालय परिसर और कक्षा-कक्ष में किस तरह के प्रावधान किए जाएँ, प्रशासन को इस संदर्भ में पत्र द्वारा सुझाव दीजिए।

- कैप्टन फेरी लगाता था।
  फेरीवाले हमारे दिन-प्रतिदिन की बहुत-सी ज़रूरतों को आसान बना देते हैं। फेरीवालों के योगदान व समस्याओं पर एक संपादकीय लेख तैयार कीजिए।

- नेताजी सुभाषचंद्र बोस के व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक प्रोजेक्ट बनाइए।

- अपने घर के आस-पास देखिए और पता लगाइए कि नगरपालिका ने क्या-क्या काम करवाए हैं? हमारी भूमिका उसमें क्या हो सकती है?

नीचे दिए गए निबंध का अंश पढ़िए और समझिए कि गद्य की विविध विधाओं में एक ही भाव को अलग-अलग प्रकार से कैसे व्यक्त किया जा सकता है–

देश-प्रेम

देश-प्रेम है क्या? प्रेम ही तो है। इस प्रेम का आलंबन क्या है? सारा देश अर्थात मनुष्य, पशु, पक्षी, नदी, नाले, वन पर्वत सहित सारी भूमि। यह प्रेम किस प्रकार का है? यह साहचर्यगत प्रेम है। जिनके बीच हम रहते हैं, जिन्हें बराबर आँखों से देखते हैं, जिनकी बातें बराबर सुनते रहते हैं, जिनका हमारा हर घड़ी का साथ रहता है, सारांश यह है कि जिनके सान्निध्य का हमें अभ्यास पड़ जाता है, उनके प्रति लोभ या राग हो सकता है। देश-प्रेम यदि वास्तव में अंत:करण का कोई भाव है तो यही हो सकता है। यदि यह नहीं है तो वह कोरी बकवास या किसी और भाव के संकेत के लिए गढ़ा हुआ शब्द है।

यदि किसी को अपने देश से सचमुच प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, वन, पर्वत, नदी, निर्झर आदि सबसे प्रेम होगा, वह सबको चाहभरी दृष्टि से देखेगा; वह सबकी सुध करके विदेश में आँसू बहाएगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है, जो यह भी नहीं सुनते कि चातक कहाँ चिल्लाता है, जो यह भी आँख भर नहीं देखते कि आम प्रणय-सौरभपूर्ण मंजरियों से कैसे लदे हुए हैं, जो यह भी नहीं झाँकते कि किसानों के झोंपड़ों के भीतर क्या हो रहा है, वे यदि बस बने-ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का परता बताकर देश-प्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि भाइयो! बिना रूप परिचय का यह प्रेम कैसा? जिनके दुख-सुख के तुम कभी साथी नहीं हुए उन्हें तुम सुखी देखना चाहते हो, यह कैसे समझे? उनसे कोसों दूर बैठे-बैठे, पड़े-पड़े या खड़े-खड़े तुम विलायती बोली में 'अर्थशास्त्र' की दुहाई दिया करो, पर प्रेम का नाम उसके साथ न घसीटो। प्रेम हिसाब-किताब नहीं है। हिसाब-किताब करने वाले भाड़े पर भी मिल सकते हैं, पर प्रेम करने वाले नहीं।

हिसाब-किताब से देश की दशा का ज्ञान-मात्र हो सकता है। हित-चिंतन और हित-साधन की प्रवृत्ति कोरे ज्ञान से भिन्न है। वह मन के वेग या भाव पर अवलंबित है, उसका संबंध लोभ या प्रेम से है, जिसके बिना अन्य पक्ष में आवश्यक त्याग का उत्साह हो नहीं सकता।

–आचार्य रामचंद्र शुक्ल

11

रामवृक्ष बेनीपुरी

रामवृक्ष **बेनीपुरी** का जन्म बिहार के मुजफ़्फ़रपुर ज़िले के बेनीपुर गाँव में सन् 1899 में हुआ। माता-पिता का निधन बचपन में ही हो जाने के कारण जीवन के आरंभिक वर्ष अभावों-कठिनाइयों और संघर्षों में बीते। दसवीं तक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे सन् 1920 में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से सक्रिय रूप से जुड़ गए। कई बार जेल भी गए। उनका देहावसान सन् 1968 में हुआ।

15 वर्ष की अवस्था में बेनीपुरी जी की रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगीं। वे बेहद प्रतिभाशाली पत्रकार थे। उन्होंने अनेक दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया, जिनमें **तरुण भारत, किसान मित्र, बालक, युवक, योगी, जनता, जनवाणी** और **नयी धारा** उल्लेखनीय हैं।

गद्य की विविध विधाओं में उनके लेखन को व्यापक प्रतिष्ठा मिली। उनका पूरा साहित्य **बेनीपुरी रचनावली** के आठ खंडों में प्रकाशित है। उनकी रचना-यात्रा के महत्त्वपूर्ण पड़ाव हैं–**पतितों के देश में** (उपन्यास); **चिता के फूल** (कहानी); **अंबपाली** (नाटक); **माटी की मूरतें** (रेखाचित्र); **पैरों में पंख बाँधकर** (यात्रा-वृत्तांत); **ज़ंजीरें और दीवारें** (संस्मरण) आदि। उनकी रचनाओं में स्वाधीनता की चेतना, मनुष्यता की चिंता और इतिहास की युगानुरूप व्याख्या है। विशिष्ट शैलीकार होने के कारण उन्हें 'कलम का जादूगर' कहा जाता है।

बालगोबिन भगत *रेखाचित्र के माध्यम से लेखक ने एक ऐसे विलक्षण चरित्र का उद्‌घाटन किया है जो मनुष्यता, लोक संस्कृति और सामूहिक चेतना का प्रतीक है। वेशभूषा या बाह्य अनुष्ठानों से कोई संन्यासी नहीं होता, संन्यास का आधार जीवन के मानवीय सरोकार होते हैं। बालगोबिन भगत इसी आधार पर लेखक को संन्यासी लगते हैं। यह पाठ सामाजिक रूढ़ियों पर भी प्रहार करता है। इस रेखाचित्र की एक विशेषता यह है कि बालगोबिन भगत के माध्यम से ग्रामीण जीवन की सजीव झाँकी देखने को मिलती है।*

बालगोबिन भगत

बालगोबिन भगत मँझोले कद के गोरे-चिट्टे आदमी थे। साठ से ऊपर के ही होंगे। बाल पक गए थे। लंबी दाढ़ी या जटाजूट तो नहीं रखते थे, किंतु हमेशा उनका चेहरा सफ़ेद बालों से ही जगमग किए रहता। कपड़े बिलकुल कम पहनते। कमर में एक लंगोटी-मात्र और सिर में कबीरपंथियों की-सी कनफटी टोपी। जब जाड़ा आता, एक काली कमली ऊपर से ओढ़े रहते। मस्तक पर हमेशा चमकता हुआ रामानंदी चंदन, जो नाक के एक छोर से ही, औरतों के टीके की तरह, शुरू होता। गले में तुलसी की जड़ों की एक बेडौल माला बाँधे रहते।

ऊपर की तसवीर से यह नहीं माना जाए कि बालगोबिन भगत साधु थे। नहीं, बिलकुल गृहस्थ! उनकी गृहिणी की तो मुझे याद नहीं, उनके बेटे और पतोहू को तो मैंने देखा था। थोड़ी खेतीबारी भी थी, एक अच्छा साफ़-सुथरा मकान भी था।

किंतु, खेतीबारी करते, परिवार रखते भी, बालगोबिन भगत साधु थे—साधु की सब परिभाषाओं में खरे उतरनेवाले। कबीर को 'साहब' मानते थे, उन्हीं के गीतों को गाते, उन्हीं के आदेशों पर चलते। कभी झूठ नहीं बोलते, खरा व्यवहार रखते। किसी से भी दो-टूक बात करने में संकोच नहीं करते, न किसी से खामखाह झगड़ा मोल लेते। किसी की चीज़ नहीं छूते, न बिना पूछे व्यवहार में लाते। इस नियम को कभी-कभी इतनी बारीकी तक ले जाते कि लोगों को कुतूहल होता!—कभी वह दूसरे के खेत में शौच के लिए भी नहीं बैठते! वह गृहस्थ थे; लेकिन उनकी सब चीज़ 'साहब' की थी। जो कुछ खेत में पैदा होता, सिर पर लादकर पहले उसे साहब के दरबार में ले जाते—जो उनके घर से चार कोस दूर पर था—एक कबीरपंथी मठ से मतलब! वह दरबार में 'भेंट' रूप रख लिया जाकर 'प्रसाद' रूप में जो उन्हें मिलता, उसे घर लाते और उसी से गुज़र चलाते!

इन सबके ऊपर, मैं तो मुग्ध था उनके मधुर गान पर—जो सदा-सर्वदा ही सुनने को मिलते। कबीर के वे सीधे-सादे पद, जो उनके कंठ से निकलकर सजीव हो उठते।

आसाढ़ की रिमझिम है। समूचा गाँव खेतों में उतर पड़ा है। कहीं हल चल रहे हैं; कहीं रोपनी हो रही है। धान के पानी-भरे खेतों में बच्चे उछल रहे हैं। औरतें कलेवा लेकर मेंड़

पर बैठी हैं। आसमान बादल से घिरा; धूप का नाम नहीं। ठंडी पुरवाई चल रही। ऐसे ही समय आपके कानों में एक स्वर-तरंग झंकार-सी कर उठी। यह क्या है–यह कौन है! यह पूछना न पड़ेगा। बालगोबिन भगत समूचा शरीर कीचड़ में लिथड़े, अपने खेत में रोपनी कर रहे हैं। उनकी अँगुली एक-एक धान के पौधे को, पंक्तिबद्ध, खेत में बिठा रही है। उनका कंठ एक-एक शब्द को संगीत के जीने पर चढ़ाकर कुछ को ऊपर, स्वर्ग की ओर भेज रहा है और कुछ को इस पृथ्वी की मिट्टी पर खड़े लोगों के कानों की ओर! बच्चे खेलते हुए झूम उठते हैं; मेंड़ पर खड़ी औरतों के होंठ काँप उठते हैं, वे गुनगुनाने लगती हैं; हलवाहों के पैर ताल से उठने लगते हैं; रोपनी करनेवालों की अँगुलियाँ एक अजीब क्रम से चलने लगती हैं! बालगोबिन भगत का यह संगीत है या जादू!

भादो की वह अँधेरी अधरतिया। अभी, थोड़ी ही देर पहले मुसलधार वर्षा खत्म हुई है। बादलों की गरज, बिजली की तड़प में आपने कुछ नहीं सुना हो, किंतु अब झिल्ली की झंकार या दादुरों की टर्र-टर्र बालगोबिन भगत के संगीत को अपने कोलाहल में डुबो नहीं सकतीं। उनकी खँजड़ी डिमक-डिमक बज रही है और वे गा रहे हैं–"गोदी में पियवा, चमक उठे सखिया, चिहुँक उठे ना!" हाँ, पिया तो गोद में ही है, किंतु वह समझती है, वह अकेली है, चमक उठती है, चिहुँक उठती है। उसी भरे-बादलों वाले भादो की आधी रात में उनका यह गाना अँधेरे में अकस्मात कौंध उठने वाली बिजली की तरह किसे न चौंका देता? अरे, अब सारा संसार निस्तब्धता में सोया है, बालगोबिन भगत का संगीत जाग रहा है, जगा रहा है!–तेरी गठरी में लागा चोर, मुसाफ़िर जाग ज़रा!

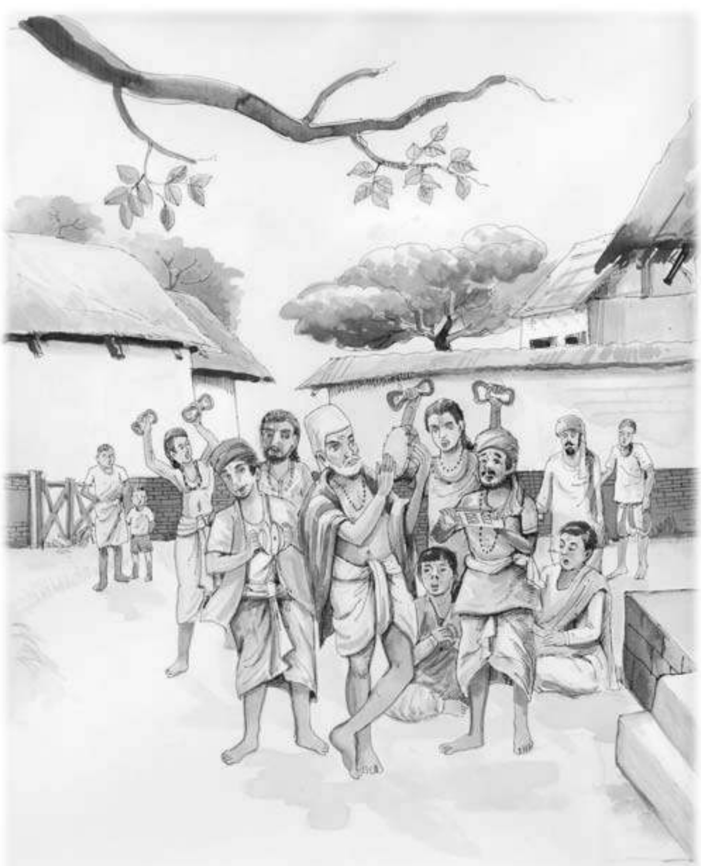

कातिक आया नहीं कि बालगोबिन भगत की प्रभातियाँ शुरू हुईं, जो फागुन तक चला करतीं। इन दिनों वह सबेरे ही

उठते। न जाने किस वक्त जगकर वह नदी-स्नान को जाते—गाँव से दो मील दूर! वहाँ से नहा-धोकर लौटते और गाँव के बाहर ही, पोखरे के ऊँचे भिंडे पर, अपनी खँजड़ी लेकर जा बैठते और अपने गाने टेरने लगते। मैं शुरू से ही देर तक सोनेवाला हूँ, किंतु, एक दिन, माघ की उस दाँत किटकिटानेवाली भोर में भी, उनका संगीत मुझे पोखरे पर ले गया था। अभी आसमान के तारों के दीपक बुझे नहीं थे। हाँ, पूरब में लोही लग गई थी जिसकी लालिमा को शुक्र तारा और बढ़ा रहा था। खेत, बगीचा, घर—सब पर कुहासा छा रहा था। सारा वातावरण अजीब रहस्य से आवृत मालूम पड़ता था। उस रहस्यमय वातावरण में एक कुश की चटाई पर पूरब मुँह, काली कमली ओढ़े, बालगोबिन भगत अपनी खँजड़ी लिए बैठे थे। उनके मुँह से शब्दों का ताँता लगा था, उनकी अँगुलियाँ खँजड़ी पर लगातार चल रही थीं। गाते-गाते इतने मस्त हो जाते, इतने सुरूर में आते, उत्तेजित हो उठते कि मालूम होता, अब खड़े हो जाएँगे। कमली तो बार-बार सिर से नीचे सरक जाती। मैं जाड़े से कँपकँपा रहा था, किंतु तारे की छाँव में भी उनके मस्तक के श्रमबिंदु, जब-तब, चमक ही पड़ते।

गर्मियों में उनकी 'संझा' कितनी उमसभरी शाम को न शीतल करती! अपने घर के आँगन में आसन जमा बैठते। गाँव के उनके कुछ प्रेमी भी जुट जाते। खँजड़ियों और करतालों की भरमार हो जाती। एक पद बालगोबिन भगत कह जाते, उनकी प्रेमी-मंडली उसे दुहराती, तिहराती। धीरे-धीरे स्वर ऊँचा होने लगता—एक निश्चित ताल, एक निश्चित गति से। उस ताल-स्वर के चढ़ाव के साथ श्रोताओं के मन भी ऊपर उठने लगते। धीरे-धीरे मन तन पर हावी हो जाता। होते-होते, एक क्षण ऐसा आता कि बीच में खँजड़ी लिए बालगोबिन भगत नाच रहे हैं और उनके साथ ही सबके तन और मन नृत्यशील हो उठे हैं। सारा आँगन नृत्य और संगीत से ओतप्रोत है!

बालगोबिन भगत की संगीत-साधना का चरम उत्कर्ष उस दिन देखा गया जिस दिन उनका बेटा मरा। इकलौता बेटा था वह! कुछ सुस्त और बोदा-सा था, किंतु इसी कारण बालगोबिन भगत उसे और भी मानते। उनकी समझ में ऐसे आदमियों पर ही ज़्यादा नज़र रखनी चाहिए या प्यार करना चाहिए, क्योंकि ये निगरानी और मुहब्बत के ज़्यादा हकदार होते हैं। बड़ी साध से उसकी शादी कराई थी, पतोहू बड़ी ही सुभग और सुशील मिली थी। घर की पूरी प्रबंधिका बनकर भगत को बहुत कुछ दुनियादारी से निवृत्त कर दिया था उसने। उनका बेटा बीमार है, इसकी खबर रखने की लोगों को कहाँ फ़ुरसत! किंतु मौत तो अपनी ओर सबका ध्यान खींचकर ही रहती है। हमने सुना, बालगोबिन भगत का बेटा मर गया। कुतूहलवश उनके घर गया। देखकर दंग रह गया। बेटे को आँगन में एक चटाई पर लिटाकर एक सफ़ेद कपड़े से ढाँक रखा है। वह कुछ फूल तो हमेशा ही रोपते रहते, उन फूलों में से कुछ तोड़कर उस पर बिखरा दिए हैं; फूल और तुलसीदल भी। सिरहाने एक चिराग जला

रखा है। और, उसके सामने ज़मीन पर ही आसन जमाए गीत गाए चले जा रहे हैं! वही पुराना स्वर, वही पुरानी तल्लीनता। घर में पतोहू रो रही है जिसे गाँव की स्त्रियाँ चुप कराने की कोशिश कर रही हैं। किंतु, बालगोबिन भगत गाए जा रहे हैं! हाँ, गाते-गाते कभी-कभी पतोहू के नज़दीक भी जाते और उसे रोने के बदले उत्सव मनाने को कहते। आत्मा परमात्मा के पास चली गई, विरहिनी अपने प्रेमी से जा मिली, भला इससे बढ़कर आनंद की कौन बात? मैं कभी-कभी सोचता, यह पागल तो नहीं हो गए। किंतु नहीं, वह जो कुछ कह रहे थे उसमें उनका विश्वास बोल रहा था—वह चरम विश्वास जो हमेशा ही मृत्यु पर विजयी होता आया है।

बेटे के क्रिया-कर्म में तूल नहीं किया; पतोहू से ही आग दिलाई उसकी। किंतु ज्योंही श्राद्ध की अवधि पूरी हो गई, पतोहू के भाई को बुलाकर उसके साथ कर दिया, यह आदेश देते हुए कि इसकी दूसरी शादी कर देना। इधर पतोहू रो-रोकर कहती—मैं चली जाऊँगी तो बुढ़ापे में कौन आपके लिए भोजन बनाएगा, बीमार पड़े, तो कौन एक चुल्लू पानी भी देगा? मैं पैर पड़ती हूँ, मुझे अपने चरणों से अलग नहीं कीजिए! लेकिन भगत का निर्णय अटल था। तू जा, नहीं तो मैं ही इस घर को छोड़कर चल दूँगा—यह थी उनकी आखिरी दलील और इस दलील के आगे बेचारी की क्या चलती?

बालगोबिन भगत की मौत उन्हीं के अनुरूप हुई। वह हर वर्ष गंगा-स्नान करने जाते। स्नान पर उतनी आस्था नहीं रखते, जितना संत-समागम और लोक-दर्शन पर। पैदल ही जाते। करीब तीस कोस पर गंगा थी। साधु को संबल लेने का क्या हक? और, गृहस्थ किसी से भिक्षा क्यों माँगे? अतः, घर से खाकर चलते, तो फिर घर पर ही लौटकर खाते। रास्ते भर खँजड़ी बजाते, गाते जहाँ प्यास लगती, पानी पी लेते। चार-पाँच दिन आने-जाने में लगते; किंतु इस लंबे उपवास में भी वही मस्ती! अब बुढ़ापा आ गया था, किंतु टेक वही जवानीवाली। इस बार लौटे तो तबीयत कुछ सुस्त थी। खाने-पीने के बाद भी तबीयत नहीं सुधरी, थोड़ा बुखार आने लगा। किंतु नेम-व्रत तो छोड़नेवाले नहीं थे। वही दोनों जून गीत, स्नानध्यान, खेतीबारी देखना। दिन-दिन छीजने लगे। लोगों ने नहाने-धोने से मना किया, आराम करने को कहा। किंतु, हँसकर टाल देते रहे। उस दिन भी संध्या में गीत गाए, किंतु मालूम होता जैसे तागा टूट गया हो, माला का एक-एक दाना बिखरा हुआ। भोर में लोगों ने गीत नहीं सुना, जाकर देखा तो बालगोबिन भगत नहीं रहे सिर्फ़ उनका पंजर पड़ा है!

प्रश्न-अभ्यास

1. खेतीबारी से जुड़े गृहस्थ बालगोबिन भगत अपनी किन चारित्रिक विशेषताओं के कारण साधु कहलाते थे?
2. भगत की पुत्रवधू उन्हें अकेले क्यों नहीं छोड़ना चाहती थी?
3. भगत ने अपने बेटे की मृत्यु पर अपनी भावनाएँ किस तरह व्यक्त कीं?
4. भगत के व्यक्तित्व और उनकी वेशभूषा का अपने शब्दों में चित्र प्रस्तुत कीजिए।
5. बालगोबिन भगत की दिनचर्या लोगों के अचरज का कारण क्यों थी?
6. पाठ के आधार पर बालगोबिन भगत के मधुर गायन की विशेषताएँ लिखिए।
7. कुछ मार्मिक प्रसंगों के आधार पर यह दिखाई देता है कि बालगोबिन भगत प्रचलित सामाजिक मान्यताओं को नहीं मानते थे। पाठ के आधार पर उन प्रसंगों का उल्लेख कीजिए।
8. धान की रोपाई के समय समूचे माहौल को भगत की स्वर लहरियाँ किस तरह चमत्कृत कर देती थीं? उस माहौल का शब्द-चित्र प्रस्तुत कीजिए।

रचना और अभिव्यक्ति

9. पाठ के आधार पर बताएँ कि बालगोबिन भगत की कबीर पर श्रद्धा किन-किन रूपों में प्रकट हुई है?
10. आपकी दृष्टि में भगत की कबीर पर अगाध श्रद्धा के क्या कारण रहे होंगे?
11. गाँव का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश आषाढ़ चढ़ते ही उल्लास से क्यों भर जाता है?
12. “ऊपर की तसवीर से यह नहीं माना जाए कि बालगोबिन भगत साधु थे।” क्या ‘साधु’ की पहचान पहनावे के आधार पर की जानी चाहिए? आप किन आधारों पर यह सुनिश्चित करेंगे कि अमुक व्यक्ति ‘साधु’ है?
13. मोह और प्रेम में अंतर होता है। भगत के जीवन की किस घटना के आधार पर इस कथन का सच सिद्ध करेंगे?

भाषा-अध्ययन

14. इस पाठ में आए कोई दस क्रियाविशेषण छाँटकर लिखिए और उनके भेद भी बताइए।

पाठेतर सक्रियता

- पाठ में ऋतुओं के बहुत ही सुंदर शब्द-चित्र उकेरे गए हैं। बदलते हुए मौसम को दर्शाते हुए चित्र/फ़ोटो का संग्रह कर एक अलबम तैयार कीजिए।

- पाठ में आषाढ़, भादो, माघ आदि में विक्रम संवत कलैंडर के मासों के नाम आए हैं। यह कलैंडर किस माह से आरंभ होता है? महीनों की सूची तैयार कीजिए।
- कार्तिक के आते ही भगत 'प्रभाती' गाया करते थे। प्रभाती प्रातःकाल गाए जाने वाले गीतों को कहते हैं। प्रभाती गायन का संकलन कीजिए और उसकी संगीतमय प्रस्तुति कीजिए।
- इस पाठ में जो ग्राम्य संस्कृति की झलक मिलती है वह आपके आसपास के वातावरण से कैसे भिन्न है?

शब्द-संपदा

मँझोला	-	न बहुत बड़ा न बहुत छोटा
कमली	-	कंबल
पतोहू	-	पुत्रवधू / पुत्र की स्त्री
रोपनी	-	धान की रोपाई
कलेवा	-	सवेरे का जलपान
पुरवाई	-	पूरब की ओर से बहने वाली हवा
अधरतिया	-	आधी रात
खँजड़ी	-	ढफली के ढंग का परंतु आकार में उससे छोटा एक वाद्य यंत्र
निस्तब्धता	-	सन्नाटा
लोही	-	प्रातःकाल की लालिमा
कुहासा	-	कोहरा
आवृत	-	ढका हुआ, आच्छादित
कुश	-	एक प्रकार की नुकीली घास
बोदा	-	कम बुद्धि वाला
संबल	-	सहारा

यह भी जानें

प्रभातियाँ मुख्य रूप से बच्चों को जगाने के लिए गाई जाती हैं। प्रभाती में सूर्योदय से कुछ समय पूर्व से लेकर कुछ समय बाद तक का वर्णन होता है। प्रभातियों का भावक्षेत्र व्यापक और यथार्थ के अधिक निकट होता है। प्रभातियों या जागरण गीतों में केवल सुकोमल भावनाएँ ही नहीं वरन् वीरता, साहस और उत्साह की बातें भी कही जाती हैं। कुछ कवियों ने प्रभातियों में राष्ट्रीय चेतना और विकास की भावना को पिरोने का प्रयास किया है।

श्री शंभूदयाल सक्सेना द्वारा रचित एक प्रभाती–

पलकें, खोलो, रैन सिरानी।
बाबा चले खेत को हल ले सखियाँ भरतीं पानी।।
बहुएँ घर-घर छाछ बिलोतीं गातीं गीत मथानी।
चरखे के संग गुन-गुन करती सूत कातती नानी।।
मंगल गाती चील चिरैया आस्मान फहरानी।
रोम-रोम में रमी लाडली जीवन ज्योत सुहानी।।
आलस छोड़ो, उठो न सुखदे! मैं तब मोल बिकानी।।
पलकें खोलो हे कल्याणी।।

12
यशपाल

यशपाल का जन्म सन् 1903 में पंजाब के फीरोज़पुर छावनी में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा काँगड़ा में ग्रहण करने के बाद लाहौर के नेशनल कॉलेज से उन्होंने बी.ए. किया। वहाँ उनका परिचय भगत सिंह और सुखदेव से हुआ। स्वाधीनता संग्राम की क्रांतिकारी धारा से जुड़ाव के कारण वे जेल भी गए। उनकी मृत्यु सन् 1976 में हुई।

यशपाल की रचनाओं में आम आदमी के सरोकारों की उपस्थिति है। वे यथार्थवादी शैली के विशिष्ट रचनाकार हैं। सामाजिक विषमता, राजनैतिक पाखंड और रूढ़ियों के खिलाफ़ उनकी रचनाएँ मुखर हैं। उनके कहानी संग्रहों में **ज्ञानदान, तर्क का तूफ़ान, पिंजरे की उड़ान, वा दुलिया, फूलो का कुर्ता** उल्लेखनीय हैं। उनका **झूठा सच** उपन्यास भारत विभाजन की त्रासदी का मार्मिक दस्तावेज़ है। **अमिता, दिव्या, पार्टी कामरेड, दादा कामरेड**, **मेरी तेरी उसकी बात,** उनके अन्य प्रमुख उपन्यास हैं। भाषा की स्वाभाविकता और सजीवता उनकी रचनागत विशेषता है।

*यूँ तो यशपाल ने **लखनवी अंदाज़** व्यंग्य यह साबित करने के लिए लिखा था कि बिना कथ्य के कहानी नहीं लिखी जा सकती परंतु एक स्वतंत्र रचना के रूप में इस रचना को पढ़ा जा सकता है। यशपाल उस पतनशील सामंती वर्ग पर कटाक्ष करते हैं जो वास्तविकता से बेखबर एक बनावटी जीवन शैली का आदी है। कहना न होगा कि आज के समय में भी ऐसी परजीवी संस्कृति को देखा जा सकता है।*

लखनवी अंदाज़

मुफ़स्सिल की पैसेंजर ट्रेन चल पड़ने की उतावली में फूँकार रही थी। आराम से सेकंड क्लास में जाने के लिए दाम अधिक लगते हैं। दूर तो जाना नहीं था। भीड़ से बचकर, एकांत में नयी कहानी के संबंध में सोच सकने और खिड़की से प्राकृतिक दृश्य देख सकने के लिए टिकट सेकंड क्लास का ही ले लिया।

गाड़ी छूट रही थी। सेकंड क्लास के एक छोटे डिब्बे को खाली समझकर, ज़रा दौड़कर उसमें चढ़ गए। अनुमान के प्रतिकूल डिब्बा निर्जन नहीं था। एक बर्थ पर लखनऊ की नवाबी नस्ल के एक सफ़ेदपोश सज्जन बहुत सुविधा से पालथी मारे बैठे थे। सामने दो ताज़े-चिकने खीरे तौलिए पर रखे थे। डिब्बे में हमारे सहसा कूद जाने से सज्जन की आँखों में एकांत चिंतन में विघ्न का असंतोष दिखाई दिया। सोचा, हो सकता है, यह भी कहानी के लिए सूझ की चिंता में हों या खीरे-जैसी अपदार्थ वस्तु का शौक करते देखे जाने के संकोच में हों।

नवाब साहब ने संगति के लिए उत्साह नहीं दिखाया। हमने भी उनके सामने की बर्थ पर बैठकर आत्मसम्मान में आँखें चुरा लीं।

ठाली बैठे, कल्पना करते रहने की पुरानी आदत है। नवाब साहब की असुविधा और संकोच के कारण का अनुमान करने लगे। संभव है, नवाब साहब ने बिलकुल अकेले यात्रा कर सकने के अनुमान में किफ़ायत के विचार से सेकंड क्लास का टिकट खरीद लिया हो और अब गवारा न हो कि शहर का कोई सफ़ेदपोश उन्हें मँझले दर्जे में सफ़र करता देखे।...अकेले सफ़र का वक्त काटने के लिए ही खीरे खरीदे होंगे और अब किसी सफ़ेदपोश के सामने खीरा कैसे खाएँ?

हम कनखियों से नवाब साहब की ओर देख रहे थे। नवाब साहब कुछ देर गाड़ी की खिड़की से बाहर देखकर स्थिति पर गौर करते रहे।

'ओह', नवाब साहब ने सहसा हमें संबोधन किया, 'आदाब-अर्ज़', जनाब, खीरे का शौक फ़रमाएँगे?

नवाब साहब का सहसा भाव-परिवर्तन अच्छा नहीं लगा। भाँप लिया, आप शराफ़त का गुमान बनाए रखने के लिए हमें भी मामूली लोगों की हरकत में लथेड़ लेना चाहते हैं। जवाब दिया, 'शुक्रिया, किबला शौक फरमाएँ।'

नवाब साहब ने फिर एक पल खिड़की से बाहर देखकर गौर किया और दृढ़ निश्चय से खीरों के नीचे रखा तौलिया झाड़कर सामने बिछा लिया। सीट के नीचे से लोटा उठाकर दोनों खीरों को खिड़की से बाहर धोया और तौलिए से पोंछ लिया। जेब से चाकू निकाला। दोनों खीरों के सिर काटे और उन्हें गोदकर झाग निकाला। फिर खीरों को बहुत एहतियात से छीलकर फाँकों को करीने से तौलिए पर सजाते गए।

लखनऊ स्टेशन पर खीरा बेचने वाले खीरे के इस्तेमाल का तरीका जानते हैं। ग्राहक के लिए जीरा-मिला नमक और पिसी हुई लाल मिर्च की पुड़िया भी हाज़िर कर देते हैं।

नवाब साहब ने बहुत करीने से खीरे की फाँकों पर जीरा-मिला नमक और लाल मिर्च की सुर्खी बुरक दी। उनकी प्रत्येक भाव-भंगिमा और जबड़ों के स्फुरण से स्पष्ट था कि उस प्रक्रिया में उनका मुख खीरे के रसास्वादन की कल्पना से प्लावित हो रहा था।

हम कनखियों से देखकर सोच रहे थे, मियाँ रईस बनते हैं, लेकिन लोगों की नज़रों से बच सकने के खयाल में अपनी असलियत पर उतर आए हैं।

नवाब साहब ने फिर एक बार हमारी ओर देख लिया, 'वल्लाह, शौक कीजिए, लखनऊ का बालम खीरा है!'

नमक-मिर्च छिड़क दिए जाने से ताज़े खीरे की पनियाती फाँकें देखकर पानी मुँह में ज़रूर आ रहा था, लेकिन इनकार कर चुके थे। आत्मसम्मान निबाहना ही उचित समझा, उत्तर दिया, 'शुक्रिया, इस वक्त तलब महसूस नहीं हो रही, मेदा भी ज़रा कमज़ोर है, किबला शौक फरमाएँ।'

नवाब साहब ने सतृष्ण आँखों से नमक-मिर्च के संयोग से चमकती खीरे की फाँकों की ओर देखा। खिड़की के बाहर देखकर दीर्घ निश्वास लिया। खीरे की एक फाँक उठाकर होंठों तक ले गए। फाँक को सूँघा। स्वाद के आनंद में पलकें मुँद

गईं। मुँह में भर आए पानी का घूँट गले से उतर गया। तब नवाब साहब ने फाँक को खिड़की से बाहर छोड़ दिया। नवाब साहब खीरे की फाँकों को नाक के पास ले जाकर, वासना से रसास्वादन कर खिड़की के बाहर फेंकते गए।

नवाब साहब ने खीरे की सब फाँकों को खिड़की के बाहर फेंककर तौलिए से हाथ और होंठ पोंछ लिए और गर्व से गुलाबी आँखों से हमारी ओर देख लिया, मानो कह रहे हों–यह है खानदानी रईसों का तरीका!

नवाब साहब खीरे की तैयारी और इस्तेमाल से थककर लेट गए। हमें तसलीम में सिर खम कर लेना पड़ा–यह है खानदानी तहज़ीब, नफ़ासत और नज़ाकत!

हम गौर कर रहे थे, खीरा इस्तेमाल करने के इस तरीके को खीरे की सुगंध और स्वाद की कल्पना से संतुष्ट होने का सूक्ष्म, नफ़ीस या एब्स्ट्रैक्ट तरीका ज़रूर कहा जा सकता है परंतु क्या ऐसे तरीके से उदर की तृप्ति भी हो सकती है?

नवाब साहब की ओर से भरे पेट के ऊँचे डकार का शब्द सुनाई दिया और नवाब साहब ने हमारी ओर देखकर कह दिया, 'खीरा लज़ीज़ होता है लेकिन होता है सकील, नामुराद मेदे पर बोझ डाल देता है।'

ज्ञान-चक्षु खुल गए! पहचाना–ये हैं नयी कहानी के लेखक!

खीरे की सुगंध और स्वाद की कल्पना से पेट भर जाने का डकार आ सकता है तो बिना विचार, घटना और पात्रों के, लेखक की इच्छा मात्र से 'नयी कहानी' क्यों नहीं बन सकती?

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखक को नवाब साहब के किन हाव-भावों से महसूस हुआ कि वे उनसे बातचीत करने के लिए तनिक भी उत्सुक नहीं हैं?
2. नवाब साहब ने बहुत ही यत्न से खीरा काटा, नमक-मिर्च बुरका, अंततः सूँघकर ही खिड़की से बाहर फेंक दिया। उन्होंने ऐसा क्यों किया होगा? उनका ऐसा करना उनके कैसे स्वभाव को इंगित करता है?
3. बिना विचार, घटना और पात्रों के भी क्या कहानी लिखी जा सकती है। यशपाल के इस विचार से आप कहाँ तक सहमत हैं?
4. आप इस निबंध को और क्या नाम देना चाहेंगे?

रचना और अभिव्यक्ति

5. (क) नवाब साहब द्वारा खीरा खाने की तैयारी करने का एक चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस पूरी प्रक्रिया को अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।

   (ख) किन-किन चीज़ों का रसास्वादन करने के लिए आप किस प्रकार की तैयारी करते हैं?

6. खीरे के संबंध में नवाब साहब के व्यवहार को उनकी सनक कहा जा सकता है। आपने नवाबों की और भी सनकों और शौक के बारे में पढ़ा-सुना होगा। किसी एक के बारे में लिखिए।
7. क्या सनक का कोई सकारात्मक रूप हो सकता है? यदि हाँ तो ऐसी सनकों का उल्लेख कीजिए।

भाषा-अध्ययन

8. निम्नलिखित वाक्यों में से क्रियापद छाँटकर क्रिया-भेद भी लिखिए–

   (क) एक सफ़ेदपोश सज्जन बहुत सुविधा से पालथी मारे बैठे थे।

   (ख) नवाब साहब ने संगति के लिए उत्साह नहीं दिखाया।

   (ग) ठाली बैठे, कल्पना करते रहने की पुरानी आदत है।

   (घ) अकेले सफ़र का वक्त काटने के लिए ही खीरे खरीदे होंगे।

   (ङ) दोनों खीरों के सिर काटे और उन्हें गोदकर झाग निकाला।

   (च) नवाब साहब ने सतृष्ण आँखों से नमक-मिर्च के संयोग से चमकती खीरे की फाँकों की ओर देखा।

   (छ) नवाब साहब खीरे की तैयारी और इस्तेमाल से थककर लेट गए।

   (ज) जेब से चाकू निकाला।

पाठेतर सक्रियता

- 'किबला शौक फरमाएँ', 'आदाब-अर्ज़...शौक फरमाएँगे' जैसे कथन शिष्टाचार से जुड़े हैं। अपनी मातृभाषा के शिष्टाचार सूचक कथनों की एक सूची तैयार कीजिए।
- 'खीरा...मेदे पर बोझ डाल देता है' क्या वास्तव में खीरा अपच करता है? किसी भी खाद्य पदार्थ का पच-अपच होना कई कारणों पर निर्भर करता है। बड़ों से बातचीत कर कारणों का पता लगाइए।
- खाद्य पदार्थों के संबंध में बहुत-सी मान्यताएँ हैं जो आपके क्षेत्र में प्रचलित होंगी, उनके बारे में चर्चा कीजिए।
- पतनशील सामंती वर्ग का चित्रण प्रेमचंद ने अपनी एक प्रसिद्ध कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' में किया था और फिर बाद में सत्यजीत राय ने इस पर इसी नाम से एक फ़िल्म भी बनाई थी। यह कहानी ढूँढ़कर पढ़िए और संभव हो तो फ़िल्म भी देखिए।

शब्द-संपदा

मुफ़स्सिल	-	केंद्रस्थ नगर के इर्द-गिर्द के स्थान
सफ़ेदपोश	-	भद्र व्यक्ति
किफ़ायत	-	मितव्यता, समझदारी से उपयोग करना
आदाब अर्ज़	-	अभिवादन का एक ढंग
गुमान	-	भ्रम
एहतियात	-	सावधानी
बुरक देना	-	छिड़क देना
स्फुरण	-	फड़कना, हिलना
प्लावित	-	पानी भर जाना
पनियाती	-	रसीली
मेदा	-	अमाशय
तसलीम	-	सम्मान में
सिर खम करना	-	सिर झुकाना
तहज़ीब	-	शिष्टता
नफ़ासत	-	स्वच्छता
नज़ाकत	-	कोमलता
नफ़ीस	-	बढ़िया
एब्स्ट्रैक्ट	-	सूक्ष्म, जिसका भौतिक अस्तित्व न हो, अमूर्त
सकील	-	आसानी से न पचने वाला

13

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

सर्वेश्वर **दयाल सक्सेना** का जन्म सन् 1927 में ज़िला बस्ती, उत्तर प्रदेश में हुआ। उनकी उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हुई। वे अध्यापक, आकाशवाणी में सहायक प्रोड्यूसर, **दिनमान** में उपसंपादक और **पराग** के संपादक रहे। सन् 1983 में उनका आकस्मिक निधन हो गया।

सर्वेश्वर बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। वे कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार और नाटककार थे। सर्वेश्वर की प्रमुख कृतियाँ हैं–**काठ की घंटियाँ**, **कुआनो नदी**, **जंगल का दर्द**, **खूँटियों पर टँगे लोग** (कविता-संग्रह); **पागल कुत्तों का मसीहा**, **सोया हुआ जल** (उपन्यास); **लड़ाई** (कहानी-संग्रह); **बकरी** (नाटक); **भौं भौं खौं खौं**, **बतूता का जूता**, **लाख की नाक** (बाल साहित्य)। **चरचे और चरखे** उनके लेखों का संग्रह है। **खूँटियों पर टँगे लोग** पर उन्हें साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला।

सर्वेश्वर की पहचान मध्यवर्गीय आकांक्षाओं के लेखक के रूप में की जाती है। मध्यवर्गीय जीवन की महत्वाकांक्षाओं, सपनों, संघर्ष, शोषण, हताशा और कुंठा का चित्रण उनके साहित्य में मिलता है। सर्वेश्वर जी स्तंभकार थे और **चरचे और चरखे** नाम से दिनमान में जो स्तंभ लिखते थे उसमें बेबाक सच कहने का साहस दिखता है। उनकी अभिव्यक्ति में सहजता और स्वाभाविकता है।

संस्मरण स्मृतियों से बनता है और स्मृतियों की विश्वसनीयता उसे महत्त्वपूर्ण बनाती है। फ़ादर कामिल बुल्के पर लिखा सर्वेश्वर का यह संस्मरण इस कसौटी पर खरा उतरता है। अपने को भारतीय कहने वाले फ़ादर बुल्के जन्मे तो बेल्जियम (यूरोप) के रैम्सचैपल शहर में जो गिरजों, पादरियों, धर्मगुरुओं और संतों की भूमि कही जाती है परंतु उन्होंने अपनी कर्मभूमि बनाया भारत को। फ़ादर बुल्के एक संन्यासी थे परंतु पारंपरिक अर्थ में नहीं। सर्वेश्वर का फ़ादर बुल्के से अंतरंग संबंध था जिसकी झलक हमें इस संस्मरण में मिलती है। लेखक का मानना है कि जब तक रामकथा है, इस विदेशी भारतीय साधु को याद किया जाएगा तथा उन्हें हिंदी भाषा और बोलियों के अगाध प्रेम का उदाहरण माना जाएगा।

मानवीय करुणा की दिव्य चमक

फ़ादर को ज़हरबाद से नहीं मरना चाहिए था। जिसकी रगों में दूसरों के लिए मिठास भरे अमृत के अतिरिक्त और कुछ नहीं था उसके लिए इस ज़हर का विधान क्यों हो? यह सवाल किस ईश्वर से पूछें? प्रभु की आस्था ही जिसका अस्तित्व था। वह देह की इस यातना की परीक्षा उम्र की आखिरी देहरी पर क्यों दे? एक लंबी, पादरी के सफ़ेद चोगे से ढकी आकृति सामने है—गोरा रंग, सफ़ेद झाँईं मारती भूरी दाढ़ी, नीली आँखें-बाँहें खोल गले लगाने को आतुर। इतनी ममता, इतना अपनत्व इस साधु में अपने हर एक प्रियजन के लिए उमड़ता रहता था। मैं पैंतीस साल से इसका साक्षी था। तब भी जब वह इलाहाबाद में थे और तब भी जब वह दिल्ली आते थे। आज उन बाँहों का दबाब मैं अपनी छाती पर महसूस करता हूँ।

फ़ादर को याद करना एक उदास शांत संगीत को सुनने जैसा है। उनको देखना करुणा के निर्मल जल में स्नान करने जैसा था और उनसे बात करना कर्म के संकल्प से भरना था। मुझे 'परिमल' के वे दिन याद आते हैं जब हम सब एक पारिवारिक रिश्ते में बँधे जैसे थे जिसके बड़े फ़ादर बुल्के थे। हमारे हँसी-मज़ाक में वह निर्लिप्त शामिल रहते, हमारी गोष्ठियों में वह गंभीर बहस करते, हमारी रचनाओं पर बेबाक राय और सुझाव देते और हमारे घरों के किसी भी उत्सव और संस्कार में वह बड़े भाई और पुरोहित जैसे खड़े हो हमें अपने आशीषों से भर देते। मुझे अपना बच्चा और फ़ादर का उसके मुख में पहली बार अन्न डालना याद आता है और नीली आँखों की चमक में तैरता वात्सल्य भी—जैसे किसी ऊँचाई पर देवदारु की छाया में खड़े हों।

कहाँ से शुरू करें! इलाहाबाद की सड़कों पर फ़ादर की साइकिल चलती दीख रही है। वह हमारे पास आकर रुकती है, मुसकराते हुए उतरते हैं, 'देखिए-देखिए मैंने उसे पढ़ लिया है और मैं कहना चाहता हूँ...' उनको क्रोध में कभी नहीं देखा, आवेश में देखा है और ममता तथा प्यार में लबालब छलकता महसूस किया है। अकसर उन्हें देखकर लगता कि बेल्ज़ियम में इंजीनियरिंग के अंतिम वर्ष में पहुँचकर उनके मन में संन्यासी बनने की इच्छा कैसे जाग गई जबकि घर भरा-पूरा था—दो भाई, एक बहिन, माँ, पिता सभी थे।

"आपको अपने देश की याद आती है?"

"मेरा देश तो अब भारत है।"

"मैं जन्मभूमि की पूछ रहा हूँ?"

"हाँ आती है। बहुत सुंदर है मेरी जन्मभूमि–रेम्सचैपल।"

"घर में किसी की याद?"

"माँ की याद आती है–बहुत याद आती है।"

फिर अकसर माँ की स्मृति में डूब जाते देखा है। उनकी माँ की चिट्ठियाँ अकसर उनके पास आती थीं। अपने अभिन्न मित्र डॉ. रघुवंश को वह उन चिट्ठियों को दिखाते थे। पिता और भाइयों के लिए बहुत लगाव मन में नहीं था। पिता व्यवसायी थे। एक भाई वहीं पादरी हो गया है। एक भाई काम करता है, उसका परिवार है। बहन सख्त और ज़िद्दी थी। बहुत देर से उसने शादी की। फ़ादर को एकाध बार उसकी शादी की चिंता व्यक्त करते उन दिनों देखा था। भारत में बस जाने के बाद दो या तीन बार अपने परिवार से मिलने भारत से बेल्जियम गए थे।

"लेकिन मैं तो संन्यासी हूँ।"

"आप सब छोड़कर क्यों चले आए?"

"प्रभु की इच्छा थी।" वह बालकों की सी सरलता से मुसकराकर कहते, "माँ ने बचपन में ही घोषित कर दिया था कि लड़का हाथ से गया। और सचमुच इंजीनियरिंग के अंतिम वर्ष की पढ़ाई छोड़ फ़ादर बुल्के संन्यासी होने जब धर्म गुरु के पास गए और कहा कि मैं संन्यास लेना चाहता हूँ तथा एक शर्त रखी (संन्यास लेते समय संन्यास चाहने वाला शर्त रख सकता है) कि मैं भारत जाऊँगा।"

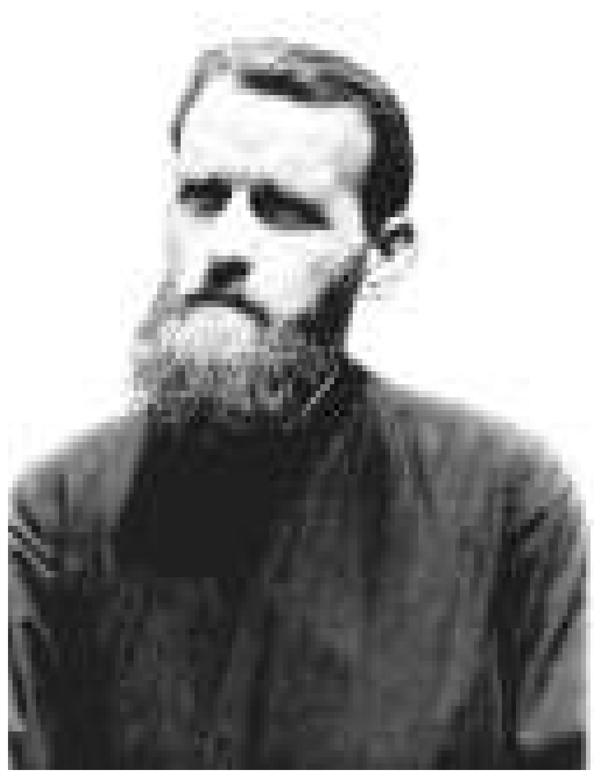

फ़ादर कामिल बुल्के

"भारत जाने की बात क्यों उठी?"

"नहीं जानता, बस मन में यह था।"

उनकी शर्त मान ली गई और वह भारत आ गए। पहले 'जिसेट संघ' में दो साल पादरियों के बीच धर्माचार की पढ़ाई की। फिर 9-10 वर्ष दार्जिलिंग में पढ़ते

रहे। कलकत्ता (कोलकाता) से बी.ए. किया और फिर इलाहाबाद से एम.ए.। उन दिनों डॉ. धीरेंद्र वर्मा हिंदी विभाग के अध्यक्ष थे। शोधप्रबंध प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में रहकर 1950 में पूरा किया—'रामकथा : उत्पत्ति और विकास।' 'परिमल' में उसके अध्याय पढ़े गए थे। फ़ादर ने मातरलिंक के प्रसिद्ध नाटक 'ब्लू बर्ड' का रूपांतर भी किया है 'नीलपंछी' के नाम से। बाद में वह सेंट जेवियर्स कॉलिज, राँची में हिंदी तथा संस्कृत विभाग के विभागाध्यक्ष हो गए और यहीं उन्होंने अपना प्रसिद्ध अंग्रेज़ी-हिंदी कोश तैयार किया और बाइबिल का अनुवाद भी...और वहीं बीमार पड़े, पटना आए। दिल्ली आए और चले गए—47 वर्ष देश में रहकर और 73 वर्ष की ज़िंदगी जीकर।

फ़ादर बुल्के संकल्प से संन्यासी थे। कभी-कभी लगता है वह मन से संन्यासी नहीं थे। रिश्ता बनाते थे तो तोड़ते नहीं थे। दसियों साल बाद मिलने के बाद भी उसकी गंध महसूस होती थी। वह जब भी दिल्ली आते ज़रूर मिलते—खोजकर, समय निकालकर, गर्मी, सर्दी, बरसात झेलकर मिलते, चाहे दो मिनट के लिए ही सही। यह कौन संन्यासी करता है? उनकी चिंता हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखने की थी। हर मंच से इसकी तकलीफ़ बयान करते, इसके लिए अकाट्य तर्क देते। बस इसी एक सवाल पर उन्हें झुँझलाते देखा है और हिंदी वालों द्वारा ही हिंदी की उपेक्षा पर दुख करते उन्हें पाया है। घर-परिवार के बारे में, निजी दुख-तकलीफ़ के बारे में पूछना उनका स्वभाव था और बड़े से बड़े दुख में उनके मुख से सांत्वना के जादू भरे दो शब्द सुनना एक ऐसी रोशनी से भर देता था जो किसी गहरी तपस्या से जनमती है। 'हर मौत दिखाती है जीवन को नयी राह।' मुझे अपनी पत्नी और पुत्र की मृत्यु याद आ रही है और फ़ादर के शब्दों से झरती विरल शांति भी।

आज वह नहीं है। दिल्ली में बीमार रहे और पता नहीं चला। बाँहें खोलकर इस बार उन्होंने गले नहीं लगाया। जब देखा तब वे बाँहें दोनों हाथों की सूजी उँगलियों को उलझाए ताबूत में जिस्म पर पड़ी थीं। जो शांति बरसती थी वह चेहरे पर थिर थी। तरलता जम गई थी। वह 18 अगस्त 1982 की सुबह दस बजे का समय था। दिल्ली में कश्मीरी गेट के निकलसन कब्रगाह में उनका ताबूत एक छोटी-सी नीली गाड़ी में से उतारा गया। कुछ पादरी, रघुवंश जी का बेटा और उनके परिजन राजेश्वरसिंह उसे उतार रहे थे। फिर उसे उठाकर एक लंबी सँकरी, उदास पेड़ों की घनी छाँह वाली सड़क से कब्रगाह के आखिरी छोर तक ले जाया गया जहाँ धरती की गोद में सुलाने के लिए कब्र अवाक् मुँह खोले लेटी थी। ऊपर करील की घनी छाँह थी और चारों ओर कब्रें और तेज़ धूप के वृत्त। जैनेंद्र कुमार, विजयेंद्र स्नातक, अजित कुमार, डॉ. निर्मला जैन और मसीही समुदाय के लोग, पादरीगण, उनके बीच में गैरिक वसन पहने इलाहाबाद के प्रसिद्ध विज्ञान-शिक्षक डॉ. सत्यप्रकाश और डॉ. रघुवंश भी जो अकेले उस सँकरी सड़क की ठंडी उदासी में बहुत पहले से खामोश दुख की किन्हीं

अपरिचित आहटों से दबे हुए थे, सिमट आए थे कब्र के चारों तरफ़। फ़ादर की देह पहले कब्र के ऊपर लिटाई गई। मसीही विधि से अंतिम संस्कार शुरू हुआ। राँची के फ़ादर पास्कल तोयना के द्वारा। उन्होंने हिंदी में मसीही विधि से प्रार्थना की फिर सेंट जेवियर्स के रेक्टर फ़ादर पास्कल ने उनके जीवन और कर्म पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा, 'फ़ादर बुल्के धरती में जा रहे हैं। इस धरती से ऐसे रत्न और पैदा हों।' डॉ. सत्यप्रकाश ने भी अपनी श्रद्धांजलि में उनके अनुकरणीय जीवन को नमन किया। फिर देह कब्र में उतार दी गई...।

मैं नहीं जानता इस संन्यासी ने कभी सोचा था या नहीं कि उसकी मृत्यु पर कोई रोएगा। लेकिन उस क्षण रोने वालों की कमी नहीं थी। (नम आँखों को गिनना स्याही फैलाना है।)

इस तरह हमारे बीच से वह चला गया जो हममें से सबसे अधिक छायादार फल-फूल गंध से भरा और सबसे अलग, सबका होकर, सबसे ऊँचाई पर, मानवीय करुणा की दिव्य चमक में लहलहाता खड़ा था। जिसकी स्मृति हम सबके मन में जो उनके निकट थे किसी यज्ञ की पवित्र आग की आँच की तरह आजीवन बनी रहेगी। मैं उस पवित्र ज्योति की याद में श्रद्धानत हूँ।

प्रश्न-अभ्यास

1. फ़ादर की उपस्थिति देवदार की छाया जैसी क्यों लगती थी?
2. फ़ादर बुल्के भारतीय संस्कृति के एक अभिन्न अंग हैं, किस आधार पर ऐसा कहा गया है?
3. पाठ में आए उन प्रसंगों का उल्लेख कीजिए जिनसे फ़ादर बुल्के का हिंदी प्रेम प्रकट होता है?
4. इस पाठ के आधार पर फ़ादर कामिल बुल्के की जो छवि उभरती है उसे अपने शब्दों में लिखिए।
5. लेखक ने फ़ादर बुल्के को 'मानवीय करुणा की दिव्य चमक' क्यों कहा है?
6. फ़ादर बुल्के ने संन्यासी की परंपरागत छवि से अलग एक नयी छवि प्रस्तुत की है, कैसे?
7. आशय स्पष्ट कीजिए–
   (क) नम आँखों को गिनना स्याही फैलाना है।
   (ख) फ़ादर को याद करना एक उदास शांत संगीत को सुनने जैसा है।

रचना और अभिव्यक्ति

8. आपके विचार से बुल्के ने भारत आने का मन क्यों बनाया होगा?
9. 'बहुत सुंदर है मेरी जन्मभूमि–रेम्सचैपल।'–इस पंक्ति में फ़ादर बुल्के की अपनी जन्मभूमि के प्रति कौन-सी भावनाएँ अभिव्यक्त होती हैं? आप अपनी जन्मभूमि के बारे में क्या सोचते हैं?

भाषा-अध्ययन

10. **मेरा देश भारत** विषय पर 200 शब्दों का निबंध लिखिए।
11. आपका मित्र हडसन एंड्री ऑस्ट्रेलिया में रहता है। उसे इस बार की गर्मी की छुट्टियों के दौरान भारत के पर्वतीय प्रदेशों के भ्रमण हेतु निमंत्रित करते हुए पत्र लिखिए।
12. निम्नलिखित वाक्यों में समुच्चयबोधक छाँटकर अलग लिखिए–
    (क) तब भी जब वह इलाहाबाद में थे और तब भी जब वह दिल्ली आते थे।
    (ख) माँ ने बचपन में ही घोषित कर दिया था कि लड़का हाथ से गया।
    (ग) वे रिश्ता बनाते थे तो तोड़ते नहीं थे।
    (घ) उनके मुख से सांत्वना के जादू भरे दो शब्द सुनना एक ऐसी रोशनी से भर देता था जो किसी गहरी तपस्या से जनमती है।
    (ङ) पिता और भाइयों के लिए बहुत लगाव मन में नहीं था लेकिन वो स्मृति में अकसर डूब जाते।

पाठेतर सक्रियता

- फ़ादर बुल्के का 'अंग्रेज़ी-हिंदी कोश' उनकी एक महत्त्वपूर्ण देन है। इस कोश को देखिए-समझिए।
- फ़ादर बुल्के की तरह ऐसी अनेक विभूतियाँ हुईं हैं जिनकी जन्मभूमि अन्यत्र थी लेकिन कर्मभूमि के रूप में उन्होंने भारत को चुना। ऐसे अन्य व्यक्तियों के बारे में जानकारी एकत्र कीजिए।
- कुछ ऐसे व्यक्ति भी हुए हैं जिनकी जन्मभूमि भारत है लेकिन उन्होंने अपनी कर्मभूमि किसी और देश को बनाया है, उनके बारे में भी पता लगाइए।
- एक अन्य पहलू यह भी है कि पश्चिम की चकाचौंध से आकर्षित होकर अनेक भारतीय विदेशों की ओर उन्मुख हो रहे हैं–इस पर अपने विचार लिखिए।

शब्द-संपदा

ज़हरबाद – गैंग्रीन, एक तरह का ज़हरीला और कष्ट साध्य फोड़ा
आस्था – विश्वास, श्रद्धा
देहरी – दहलीज़
पादरी – ईसाई धर्म का पुरोहित या आचार्य
आतुर – अधीर, उत्सुक

निर्लिप्त	–	आसक्ति रहित, जो लिप्त न हो
आवेश	–	जोश
लबालब	–	भरा हुआ
धर्माचार	–	धर्म का पालन या आचरण
रूपांतर	–	किसी वस्तु का बदला हुआ रूप
अकाट्य	–	जो कट न सके, जो बात काटी न जा सके
विरल	–	कम मिलने वाली
ताबूत	–	शव या मुरदा ले जाने वाला संदूक या बक्सा
करील	–	झाड़ी के रूप में उगने वाला एक कँटीला और बिना पत्ते का पौधा
गैरिक वसन	–	साधुओं द्वारा धारण किए जाने वाले गेरुए वस्त्र
श्रद्धानत	–	प्रेम और भक्तियुक्त पूज्यभाव

यह भी जानें

परिमल–निराला के प्रसिद्ध काव्य संकलन से प्रेरणा लेते हुए 10 दिसम्बर 1944 को प्रयाग विश्वविद्यालय के साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले कुछ उत्साही युवक मित्रों द्वारा परिमल समूह की स्थापना की गई। 'परिमल' द्वारा अखिल भारतीय स्तर की गोष्ठियाँ आयोजित की जाती थीं जिनमें कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक आदि पर खुली आलोचना और उन्मुक्त बहस की जाती। परिमल का कार्यक्षेत्र इलाहाबाद था, जौनपुर, मुंबई, मथुरा, पटना, कटनी में भी इसकी शाखाएँ रहीं। परिमल ने इलाहाबाद में साहित्य-चिंतन के प्रति नए दृष्टिकोण का न केवल निर्माण किया बल्कि शहर के वातावरण को एक साहित्यिक संस्कार देने का प्रयास भी किया।

फ़ादर कामिल बुल्के (1909-1982)
शिक्षा–एम.ए., पीएच.डी. (हिंदी)
प्रमुख कृतियाँ–रामकथा : उत्पत्ति और विकास, रामकथा और तुलसीदास, मानस-कौमुदी, ईसा-जीवन और दर्शन, अंग्रेज़ी-हिंदी कोश
1974 में पद्मभूषण से सम्मानित

14
मन्नू भंडारी

मन्नू भंडारी का जन्म सन् 1931 में गाँव भानपुरा, ज़िला मंदसौर (मध्य प्रदेश) में हुआ परंतु उनकी इंटर तक की शिक्षा-दीक्षा हुई राजस्थान के अजमेर शहर में। बाद में उन्होंने हिंदी में एम.ए. किया। दिल्ली के मिरांडा हाउस कॉलिज में अध्यापन कार्य से अवकाश प्राप्ति के बाद आजकल दिल्ली में ही रहकर स्वतंत्र लेखन कर रही हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य की प्रमुख हस्ताक्षर मन्नू भंडारी की प्रमुख रचनाएँ हैं–**एक प्लेट सैलाब**, **मैं हार गई**, **यही सच है**, **त्रिशंकु** (कहानी-संग्रह); **आपका बंटी**, **महाभोज** (उपन्यास)। इसके अलावा उन्होंने फ़िल्म एवं टेलीविज़न धारावाहिकों के लिए पटकथाएँ भी लिखी हैं। उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के लिए हिंदी अकादमी के शिखर सम्मान सहित उन्हें अनेक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं जिनमें भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के पुरस्कार शामिल हैं।

मन्नू भंडारी की कहानियाँ हों या उपन्यास उनमें भाषा और शिल्प की सादगी तथा प्रामाणिक अनुभूति मिलती है। उनकी रचनाओं में स्त्री-मन से जुड़ी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति भी देखी जा सकती है।

एक कहानी यह भी *के संदर्भ में सबसे पहले तो हम यह जान लें कि मन्नू भंडारी ने पारिभाषिक अर्थ में कोई सिलसिलेवार आत्मकथा नहीं लिखी है। अपने आत्मकथ्य में उन्होंने उन व्यक्तियों और घटनाओं के बारे में लिखा है जो उनके लेखकीय जीवन से जुड़े हुए हैं। संकलित अंश में मन्नू जी के किशोर जीवन से जुड़ी घटनाओं के साथ उनके पिताजी और उनकी कॉलिज की प्राध्यापिका शीला अग्रवाल का व्यक्तित्व विशेष तौर पर उभरकर आया है, जिन्होंने आगे चलकर उनके लेखकीय व्यक्तित्व के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। लेखिका ने यहाँ बहुत ही खूबसूरती से साधारण लड़की के असाधारण बनने के प्रारंभिक पड़ावों को प्रकट किया है। सन् '46-'47 की आज़ादी की आँधी ने मन्नू जी को भी अछूता नहीं छोड़ा। छोटे शहर की युवा होती लड़की ने आज़ादी की लड़ाई में जिस तरह भागीदारी की उसमें उसका उत्साह, ओज, संगठन-क्षमता और विरोध करने का तरीका देखते ही बनता है।*

एक कहानी यह भी

जन्मी तो मध्य प्रदेश के भानपुरा गाँव में थी, लेकिन मेरी यादों का सिलसिला शुरू होता है अजमेर के ब्रह्मपुरी मोहल्ले के उस दो-मंज़िला मकान से, जिसकी ऊपरी मंज़िल में पिताजी का साम्राज्य था, जहाँ वे निहायत अव्यवस्थित ढंग से फैली-बिखरी पुस्तकों-पत्रिकाओं और अखबारों के बीच या तो कुछ पढ़ते रहते थे या फिर 'डिक्टेशन' देते रहते थे। नीचे हम सब भाई-बहिनों के साथ रहती थीं हमारी बेपढ़ी-लिखी व्यक्तित्वविहीन माँ...सवेरे से शाम तक हम सबकी इच्छाओं और पिता जी की आज्ञाओं का पालन करने के लिए सदैव तत्पर। अजमेर से पहले पिता जी इंदौर में थे जहाँ उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, सम्मान था, नाम था। कांग्रेस के साथ-साथ वे समाज-सुधार के कामों से भी जुड़े हुए थे। शिक्षा के वे केवल उपदेश ही नहीं देते थे, बल्कि उन दिनों आठ-आठ, दस-दस विद्यार्थियों को अपने घर रखकर पढ़ाया है जिनमें से कई तो बाद में ऊँचे-ऊँचे ओहदों पर पहुँचे। ये उनकी खुशहाली के दिन थे और उन दिनों उनकी दरियादिली के चर्चे भी कम नहीं थे। एक ओर वे बेहद कोमल और संवेदनशील व्यक्ति थे तो दूसरी ओर बेहद क्रोधी और अहंवादी।

पर यह सब तो मैंने केवल सुना। देखा, तब तो इन गुणों के भग्नावशेषों को ढोते पिता थे। एक बहुत बड़े आर्थिक झटके के कारण वे इंदौर से अजमेर आ गए थे, जहाँ उन्होंने अपने अकेले के बल-बूते और हौसले से अंग्रेज़ी-हिंदी शब्दकोश (विषयवार) के अधूरे काम को आगे बढ़ाना शुरू किया जो अपनी तरह का पहला और अकेला शब्दकोश था। इसने उन्हें यश और प्रतिष्ठा तो बहुत दी, पर अर्थ नहीं और शायद गिरती आर्थिक स्थिति ने ही उनके व्यक्तित्व के सारे सकारात्मक पहलुओं को निचोड़ना शुरू कर दिया। सिकुड़ती आर्थिक स्थिति के कारण और अधिक विस्फारित उनका अहं उन्हें इस बात तक की अनुमति नहीं देता था कि वे कम-से-कम अपने बच्चों को तो अपनी आर्थिक विवशताओं का भागीदार बनाएँ। नवाबी आदतें, अधूरी महत्वाकांक्षाएँ, हमेशा शीर्ष पर रहने के बाद हाशिए पर सरकते चले जाने की यातना क्रोध बनकर हमेशा माँ को कँपाती-थरथराती रहती थीं। अपनों के हाथों विश्वासघात की जाने कैसी गहरी चोटें होंगी वे जिन्होंने आँख मूँदकर सबका विश्वास करने

वाले पिता को बाद के दिनों में इतना शक्की बना दिया था कि जब-तब हम लोग भी उसकी चपेट में आते ही रहते।

पर यह पितृ-गाथा मैं इसलिए नहीं गा रही कि मुझे उनका गौरव-गान करना है, बल्कि मैं तो यह देखना चाहती हूँ कि उनके व्यक्तित्व की कौन-सी खूबी और खामियाँ मेरे व्यक्तित्व के ताने-बाने में गुँथी हुई हैं या कि अनजाने-अनचाहे किए उनके व्यवहार ने मेरे भीतर किन ग्रंथियों को जन्म दे दिया। मैं काली हूँ। बचपन में दुबली और मरियल भी थी। गोरा रंग पिता जी की कमज़ोरी थी सो बचपन में मुझसे दो साल बड़ी, खूब गोरी, स्वस्थ और हँसमुख बहिन सुशीला से हर बात में तुलना और फिर उसकी प्रशंसा ने ही, क्या मेरे भीतर ऐसे गहरे हीन-भाव की ग्रंथि पैदा नहीं कर दी कि नाम, सम्मान और प्रतिष्ठा पाने के बावजूद आज तक मैं उससे उबर नहीं पाई? आज भी परिचय करवाते समय जब कोई कुछ विशेषता लगाकर मेरी लेखकीय उपलब्धियों का ज़िक्र करने लगता है तो मैं संकोच से सिमट ही नहीं जाती बल्कि गड़ने-गड़ने को हो आती हूँ। शायद अचेतन की किसी पर्त के नीचे दबी इसी हीन-भावना के चलते मैं अपनी किसी भी उपलब्धि पर भरोसा नहीं कर पाती...सब कुछ मुझे तुक्का ही लगता है। पिता जी के जिस शक्की स्वभाव पर मैं कभी भन्ना-भन्ना जाती थी, आज एकाएक अपने खंडित विश्वासों की व्यथा के नीचे मुझे उनके शक्की स्वभाव की झलक ही दिखाई देती है...बहुत 'अपनों' के हाथों विश्वासघात की गहरी व्यथा से उपजा शक। होश सँभालने के बाद से ही जिन पिता जी से किसी-न-किसी बात पर हमेशा मेरी टक्कर ही चलती रही, वे तो न जाने कितने रूपों में मुझमें हैं...कहीं कुंठाओं के रूप में, कहीं प्रतिक्रिया के रूप में तो कहीं प्रतिच्छाया के रूप में। केवल बाहरी भिन्नता के आधार पर अपनी परंपरा और पीढ़ियों को नकारने वालों को क्या सचमुच इस बात का बिलकुल अहसास नहीं होता कि उनका आसन्न अतीत किस कदर उनके भीतर जड़ जमाए बैठा रहता है! समय का प्रवाह भले ही हमें दूसरी दिशाओं में बहाकर ले जाए...स्थितियों का दबाव भले ही हमारा रूप बदल दे, हमें पूरी तरह उससे मुक्त तो नहीं ही कर सकता!

पिता के ठीक विपरीत थीं हमारी बेपढ़ी-लिखी माँ। धरती से कुछ ज़्यादा ही धैर्य और सहनशक्ति थी शायद उनमें। पिता जी की हर ज़्यादती को अपना प्राप्य और बच्चों की हर उचित-अनुचित फ़रमाइश और ज़िद को अपना फ़र्ज समझकर बड़े सहज भाव से स्वीकार करती थीं वे। उन्होंने ज़िंदगी भर अपने लिए कुछ माँगा नहीं, चाहा नहीं...केवल दिया ही दिया। हम भाई-बहिनों का सारा लगाव (शायद सहानुभूति से उपजा) माँ के साथ था लेकिन निहायत असहाय मजबूरी में लिपटा उनका यह त्याग कभी मेरा आदर्श नहीं बन सका...न उनका त्याग, न उनकी सहिष्णुता। खैर, जो भी हो, अब यह पैतृक-पुराण यहीं समाप्त कर अपने पर लौटती हूँ।

पाँच भाई-बहिनों में सबसे छोटी मैं। सबसे बड़ी बहिन की शादी के समय मैं शायद सात साल की थी और उसकी एक धुँधली-सी याद ही मेरे मन में है, लेकिन अपने से दो साल बड़ी बहिन सुशीला और मैंने घर के बड़े से आँगन में बचपन के सारे खेल खेले—सतोलिया, लँगड़ी-टाँग, पकड़म-पकड़ाई, काली-टीलो...तो कमरों में गुड्डे-गुड़ियों के ब्याह भी रचाए, पास-पड़ोस की सहेलियों के साथ। यों खेलने को हमने भाइयों के साथ गिल्ली-डंडा भी खेला और पतंग उड़ाने, काँच पीसकर माँजा सूतने का काम भी किया, लेकिन उनकी गतिविधियों का दायरा घर के बाहर ही अधिक रहता था और हमारी सीमा थी घर। हाँ, इतना ज़रूर था कि उस ज़माने में घर की दीवारें घर तक ही समाप्त नहीं हो जाती थीं बल्कि पूरे मोहल्ले तक फैली रहती थीं इसलिए मोहल्ले के किसी भी घर में जाने पर कोई पाबंदी नहीं थी, बल्कि कुछ घर तो परिवार का हिस्सा ही थे। आज तो मुझे बड़ी शिद्दत के साथ यह महसूस होता है कि अपनी ज़िंदगी खुद जीने के इस आधुनिक दबाव ने महानगरों के फ़्लैट में रहने वालों को हमारे इस परंपरागत 'पड़ोस-कल्चर' से विच्छिन्न करके हमें कितना संकुचित, असहाय और असुरक्षित बना दिया है। मेरी कम-से-कम एक दर्जन आरंभिक कहानियों के पात्र इसी मोहल्ले के हैं जहाँ मैंने अपनी किशोरावस्था गुज़ार अपनी युवावस्था का आरंभ किया था। एक-दो को छोड़कर उनमें से कोई भी पात्र मेरे परिवार का नहीं है। बस इनको देखते-सुनते, इनके बीच ही मैं बड़ी हुई थी लेकिन इनकी छाप मेरे मन पर कितनी गहरी थी, इस बात का अहसास तो मुझे कहानियाँ लिखते समय हुआ। इतने वर्षों के अंतराल ने भी उनकी भाव-भंगिमा, भाषा, किसी को भी धुँधला नहीं किया था और बिना किसी विशेष प्रयास के बड़े सहज भाव से वे उतरते चले गए थे। उसी समय के दा साहब अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पाते ही 'महाभोज' में इतने वर्षों बाद कैसे एकाएक जीवित हो उठे, यह मेरे अपने लिए भी आश्चर्य का विषय था... एक सुखद आश्चर्य का।

उस समय तक हमारे परिवार में लड़की के विवाह के लिए अनिवार्य योग्यता थी—उम्र में सोलह वर्ष और शिक्षा में मैट्रिक। सन् '44 में सुशीला ने यह योग्यता प्राप्त की और शादी करके कोलकाता चली गई। दोनों बड़े भाई भी आगे पढ़ाई के लिए बाहर चले गए। इन लोगों की छत्र-छाया के हटते ही पहली बार मुझे नए सिरे से अपने वजूद का एहसास हुआ। पिता जी का ध्यान भी पहली बार मुझ पर केंद्रित हुआ। लड़कियों को जिस उम्र में स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुघड़ गृहिणी और कुशल पाक-शास्त्री बनाने के नुस्खे जुटाए जाते थे, पिता जी का आग्रह रहता था कि मैं रसोई से दूर ही रहूँ। रसोई को वे भटियारखाना कहते थे और उनके हिसाब से वहाँ रहना अपनी क्षमता और प्रतिभा को भट्टी में झोंकना था। घर में आए दिन विभिन्न राजनैतिक पार्टियों के जमावड़े होते थे और जमकर बहसें होती थीं।

बहस करना पिता जी का प्रिय शगल था। चाय-पानी या नाश्ता देने जाती तो पिता जी मुझे भी वहीं बैठने को कहते। वे चाहते थे कि मैं भी वहीं बैठूँ, सुनूँ और जानूँ कि देश में चारों ओर क्या कुछ हो रहा है। देश में हो भी तो कितना कुछ रहा था। सन् '42 के आंदोलन के बाद से तो सारा देश जैसे खौल रहा था, लेकिन विभिन्न राजनैतिक पार्टियों की नीतियाँ, उनके आपसी विरोध या मतभेदों की तो मुझे दूर-दूर तक कोई समझ नहीं थी। हाँ, क्रांतिकारियों और देशभक्त शहीदों के रोमानी आकर्षण, उनकी कुर्बानियों से ज़रूर मन आक्रांत रहता था।

सो दसवीं कक्षा तक आलम यह था कि बिना किसी खास समझ के घर में होने वाली बहसें सुनती थी और बिना चुनाव किए, बिना लेखक की अहमियत से परिचित हुए किताबें पढ़ती थी। लेकिन सन् '45 में जैसे ही दसवीं पास करके मैं 'फर्स्ट इयर' में आई, हिंदी की प्राध्यापिका शीला अग्रवाल से परिचय हुआ। सावित्री गर्ल्स हाई स्कूल...जहाँ मैंने ककहरा सीखा, एक साल पहले ही कॉलिज बना था और वे इसी साल नियुक्त हुई थीं, उन्होंने बाकायदा साहित्य की दुनिया में प्रवेश करवाया। मात्र पढ़ने को, चुनाव करके पढ़ने में बदला...खुद चुन-चुनकर किताबें दीं...पढ़ी हुई किताबों पर बहसें कीं तो दो साल बीतते-न-बीतते साहित्य की दुनिया शरत्-प्रेमचंद से बढ़कर जैनेंद्र, अज्ञेय, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा तक फैल गई और फिर तो फैलती ही चली गई। उस समय जैनेंद्र जी की छोटे-छोटे सरल-सहज वाक्यों वाली शैली ने बहुत आकृष्ट किया था। 'सुनीता' (उपन्यास) बहुत अच्छा लगा था, अज्ञेय जी का उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' पढ़ा ज़रूर पर उस समय वह मेरी समझ के सीमित दायरे में समा नहीं पाया था। कुछ सालों बाद 'नदी के द्वीप' पढ़ा तो उसने मन को इस कदर बाँधा कि उसी झोंक में शेखर को फिर से पढ़ गई...इस बार कुछ समझ के साथ। यह शायद मूल्यों के मंथन का युग था...पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक, सही-गलत की बनी-बनाई धारणाओं के आगे प्रश्नचिह्न ही नहीं लग रहे थे, उन्हें ध्वस्त भी किया जा रहा था। इसी संदर्भ में जैनेंद्र का 'त्यागपत्र', भगवती बाबू का 'चित्रलेखा' पढ़ा और शीला अग्रवाल के साथ लंबी-लंबी बहसें करते हुए उस उम्र में जितना समझ सकती थी, समझा।

शीला अग्रवाल ने साहित्य का दायरा ही नहीं बढ़ाया था बल्कि घर की चारदीवारी के बीच बैठकर देश की स्थितियों को जानने-समझने का जो सिलसिला पिता जी ने शुरू किया था, उन्होंने वहाँ से खींचकर उसे भी स्थितियों की सक्रिय भागीदारी में बदल दिया। सन् '46-47 के दिन...वे स्थितियाँ, उसमें वैसे भी घर में बैठे रहना संभव था भला? प्रभात-फेरियाँ, हड़तालें, जुलूस, भाषण हर शहर का चरित्र था और पूरे दमखम और जोश-खरोश के साथ इन सबसे जुड़ना हर युवा का उन्माद। मैं भी युवा थी और शीला अग्रवाल की जोशीली बातों ने रगों में बहते खून को लावे में बदल दिया था। स्थिति यह हुई

कि एक बवंडर शहर में मचा हुआ था और एक घर में। पिता जी की आज़ादी की सीमा यहीं तक थी कि उनकी उपस्थिति में घर में आए लोगों के बीच उठूँ-बैठूँ, जानूँ-समझूँ। हाथ उठा-उठाकर नारे लगाती, हड़तालें करवाती, लड़कों के साथ शहर की सड़कें नापती लड़की को अपनी सारी आधुनिकता के बावजूद बर्दाश्त करना उनके लिए मुश्किल हो रहा था तो किसी की दी हुई आज़ादी के दायरे में चलना मेरे लिए। जब रगों में लहू की जगह लावा बहता हो तो सारे निषेध, सारी वर्जनाएँ और सारा भय कैसे ध्वस्त हो जाता है, यह तभी जाना और अपने क्रोध से सबको थरथरा देने वाले पिता जी से टक्कर लेने का जो सिलसिला तब शुरू हुआ था, राजेंद्र से शादी की, तब तक वह चलता ही रहा।

यश-कामना बल्कि कहूँ कि यश-लिप्सा, पिता जी की सबसे बड़ी दुर्बलता थी और उनके जीवन की धुरी था यह सिद्धांत कि व्यक्ति को कुछ विशिष्ट बन कर जीना चाहिए...कुछ ऐसे काम करने चाहिए कि समाज में उसका नाम हो, सम्मान हो, प्रतिष्ठा हो, वर्चस्व हो। इसके चलते ही मैं दो-एक बार उनके कोप से बच गई थी। एक बार कॉलिज से प्रिंसिपल का पत्र आया कि पिता जी आकर मिलें और बताएँ कि मेरी गतिविधियों के कारण मेरे खिलाफ़ अनुशासनात्मक कार्रवाई क्यों न की जाए? पत्र पढ़ते ही पिता जी आग-बबूला। "यह लड़की मुझे कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रखेगी...पता नहीं क्या-क्या सुनना पड़ेगा वहाँ जाकर! चार बच्चे पहले भी पढ़े, किसी ने ये दिन नहीं दिखाया।" गुस्से से भन्नाते हुए ही वे गए थे। लौटकर क्या कहर बरपा होगा, इसका अनुमान था, सो मैं पड़ोस की एक मित्र के यहाँ जाकर बैठ गई। माँ को कह दिया कि लौटकर बहुत कुछ गुबार निकल जाए, तब बुलाना। लेकिन जब माँ ने आकर कहा कि वे तो खुश ही हैं, चली चल, तो विश्वास नहीं हुआ। गई तो सही, लेकिन डरते-डरते। "सारे कॉलिज की लड़कियों पर इतना रौब है तेरा...सारा कॉलिज तुम तीन लड़कियों के इशारे पर चल रहा है? प्रिंसिपल बहुत परेशान थी और बार-बार आग्रह कर रही थी कि मैं तुझे घर बिठा लूँ, क्योंकि वे लोग किसी तरह डरा-धमकाकर, डाँट-डपटकर लड़कियों को क्लासों में भेजते हैं और अगर तुम लोग एक इशारा कर दो कि क्लास छोड़कर बाहर आ जाओ तो सारी लड़कियाँ निकलकर मैदान में जमा होकर नारे लगाने लगती हैं। तुम लोगों के मारे कॉलिज चलाना मुश्किल हो गया है उन लोगों के लिए।" कहाँ तो जाते समय पिता जी मुँह दिखाने से घबरा रहे थे और कहाँ बड़े गर्व से कहकर आए कि यह तो पूरे देश की पुकार है...इस पर कोई कैसे रोक लगा सकता है भला? बेहद गद्गद स्वर में पिता जी यह सब सुनाते रहे और मैं अवाक्। मुझे न अपनी आँखों पर विश्वास हो रहा था, न अपने कानों पर। पर यह हकीकत थी।

एक घटना और। आज़ाद हिंद फ़ौज के मुकदमे का सिलसिला था। सभी कॉलिजों, स्कूलों, दुकानों के लिए हड़ताल का आह्वान था। जो-जो नहीं कर रहे थे, छात्रों का एक बहुत

बड़ा समूह वहाँ जा-जाकर हड़ताल करवा रहा था। शाम को अजमेर का पूरा विद्यार्थी-वर्ग चौपड़ (मुख्य बाज़ार का चौराहा) पर इकट्ठा हुआ और फिर हुई भाषणबाज़ी। इस बीच पिता जी के एक निहायत दकियानूसी मित्र ने घर आकर अच्छी तरह पिता जी की लू उतारी, "अरे उस मन्नू की तो मत मारी गई है पर भंडारी जी आपको क्या हुआ? ठीक है, आपने लड़कियों को आज़ादी दी, पर देखते आप, जाने कैसे-कैसे उलटे-सीधे लड़कों के साथ हड़तालें करवाती, हुड़दंग मचाती फिर रही है वह। हमारे-आपके घरों की लड़कियों को शोभा देता है यह सब? कोई मान-मर्यादा, इज़्ज़त-आबरू का खयाल भी रह गया है आपको या नहीं?"

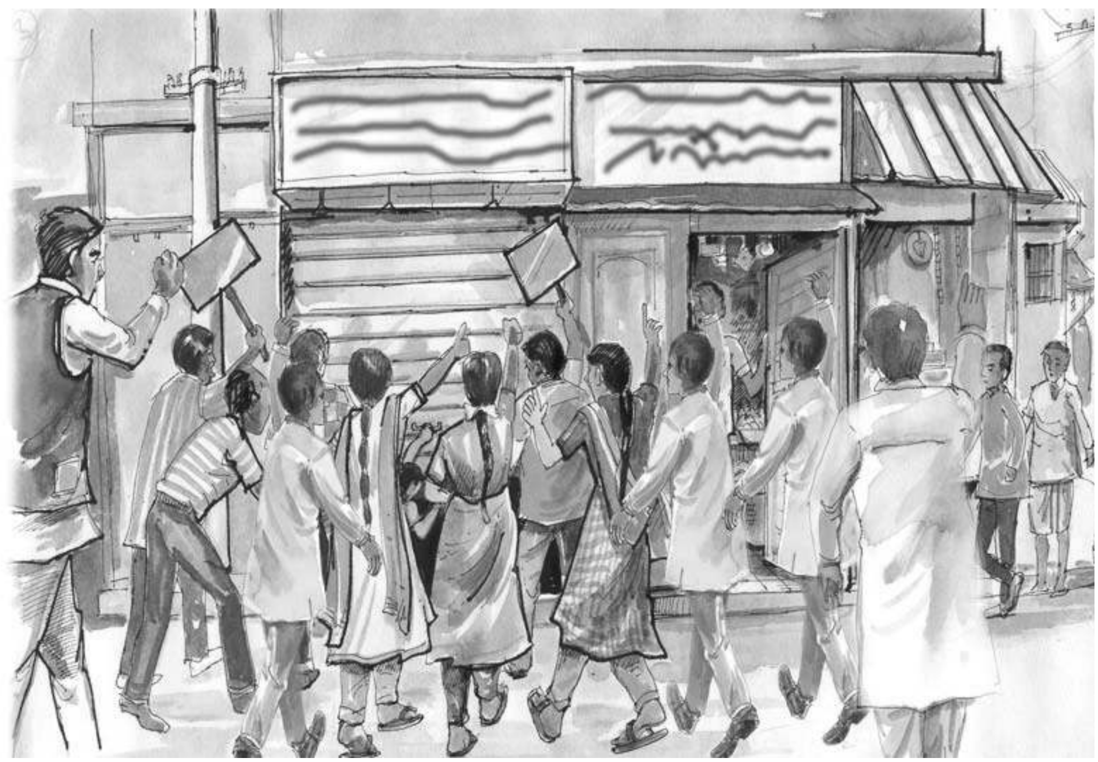

वे तो आग लगाकर चले गए और पिता जी सारे दिन भभकते रहे, "बस, अब यही रह गया है कि लोग घर आकर थू-थू करके चले जाएँ। बंद करो अब इस मन्नू का घर से बाहर निकलना।"

इस सबसे बेखबर मैं रात होने पर घर लौटी तो पिता जी के एक बेहद अंतरंग और अभिन्न मित्र ही नहीं, अजमेर के सबसे प्रतिष्ठित और सम्मानित डॉ. अंबालाल जी बैठे थे। मुझे देखते ही उन्होंने बड़ी गर्मजोशी से स्वागत किया, आओ, आओ मन्नू। मैं तो चौपड़ पर तुम्हारा भाषण सुनते ही सीधा भंडारी जी को बधाई देने चला आया। 'आई एम रिअली प्राउड ऑफ़ यू'...क्या तुम घर में घुसे रहते हो भंडारी जी...घर से निकला भी करो। 'यू हैव मिस्ड

समथिंग', और वे धुआँधार तारीफ़ करने लगे–वे बोलते जा रहे थे और पिता जी के चेहरे का संतोष धीरे-धीरे गर्व में बदलता जा रहा था। भीतर जाने पर माँ ने दोपहर के गुस्से वाली बात बताई तो मैंने राहत की साँस ली।

आज पीछे मुड़कर देखती हूँ तो इतना तो समझ में आता ही है क्या तो उस समय मेरी उम्र थी और क्या मेरा भाषण रहा होगा! यह तो डॉक्टर साहब का स्नेह था जो उनके मुँह से प्रशंसा बनकर बह रहा था या यह भी हो सकता है कि आज से पचास साल पहले अजमेर जैसे शहर में चारों ओर से उमड़ती भीड़ के बीच एक लड़की का बिना किसी संकोच और झिझक के यों धुआँधार बोलते चले जाना ही इसके मूल में रहा हो। पर पिता जी! कितनी तरह के अंतर्विरोधों के बीच जीते थे वे! एक ओर 'विशिष्ट' बनने और बनाने की प्रबल लालसा तो दूसरी ओर अपनी सामाजिक छवि के प्रति भी उतनी ही सजगता। पर क्या यह संभव है? क्या पिता जी को इस बात का बिलकुल भी अहसास नहीं था कि इन दोनों का तो रास्ता ही टकराहट का है?

सन् '47 के मई महीने में शीला अग्रवाल को कॉलिज वालों ने नोटिस थमा दिया—लड़कियों को भड़काने और कॉलिज का अनुशासन बिगाड़ने के आरोप में। इस बात को लेकर हुड़दंग न मचे, इसलिए जुलाई में थर्ड इयर की क्लासेज़ बंद करके हम दो-तीन छात्राओं का प्रवेश निषिद्ध कर दिया।

हुड़दंग तो बाहर रहकर भी इतना मचाया कि कॉलिज वालों को अगस्त में आखिर थर्ड इयर खोलना पड़ा। जीत की खुशी, पर सामने खड़ी बहुत-बहुत बड़ी चिर प्रतीक्षित खुशी के सामने यह खुशी बिला गई।

शताब्दी की सबसे बड़ी उपलब्धि...15 अगस्त 1947

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखिका के व्यक्तित्व पर किन-किन व्यक्तियों का किस रूप में प्रभाव पड़ा?
2. इस आत्मकथ्य में लेखिका के पिता ने रसोई को 'भटियारखाना' कहकर क्यों संबोधित किया है?
3. वह कौन-सी घटना थी जिसके बारे में सुनने पर लेखिका को न अपनी आँखों पर विश्वास हो पाया और न अपने कानों पर?
4. लेखिका की अपने पिता से वैचारिक टकराहट को अपने शब्दों में लिखिए।
5. इस आत्मकथ्य के आधार पर स्वाधीनता आंदोलन के परिदृश्य का चित्रण करते हुए उसमें मन्नू जी की भूमिका को रेखांकित कीजिए।

रचना और अभिव्यक्ति

6. लेखिका ने बचपन में अपने भाइयों के साथ गिल्ली डंडा तथा पतंग उड़ाने जैसे खेल भी खेले किंतु लड़की होने के कारण उनका दायरा घर की चारदीवारी तक सीमित था। क्या आज भी लड़कियों के लिए स्थितियाँ ऐसी ही हैं या बदल गई हैं, अपने परिवेश के आधार पर लिखिए।
7. मनुष्य के जीवन में आस-पड़ोस का बहुत महत्त्व होता है। परंतु महानगरों में रहने वाले लोग प्रायः 'पड़ोस कल्चर' से वंचित रह जाते हैं। इस बारे में अपने विचार लिखिए।
8. लेखिका द्वारा पढ़े गए उपन्यासों की सूची बनाइए और उन उपन्यासों को अपने पुस्तकालय में खोजिए।
9. आप भी अपने दैनिक अनुभवों को डायरी में लिखिए।

भाषा-अध्ययन

10. इस आत्मकथ्य में मुहावरों का प्रयोग करके लेखिका ने रचना को रोचक बनाया है। रेखांकित मुहावरों को ध्यान में रखकर कुछ और वाक्य बनाएँ–
    (क) इस बीच पिता जी के एक निहायत दकियानूसी मित्र ने घर आकर अच्छी तरह पिता जी की लू उतारी।
    (ख) वे तो आग लगाकर चले गए और पिता जी सारे दिन भभकते रहे।
    (ग) बस अब यही रह गया है कि लोग घर आकर थू-थू करके चले जाएँ।
    (घ) पत्र पढ़ते ही पिता जी आग-बबूला।

पाठेतर सक्रियता

- इस आत्मकथ्य से हमें यह जानकारी मिलती है कि कैसे लेखिका का परिचय साहित्य की अच्छी पुस्तकों से हुआ। आप इस जानकारी का लाभ उठाते हुए अच्छी साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने का सिलसिला शुरू कर सकते हैं। कौन जानता है कि आप में से ही कोई अच्छा पाठक बनने के साथ-साथ अच्छा रचनाकार भी बन जाए।
- लेखिका के बचपन के खेलों में लँगड़ी टाँग, पकड़म-पकड़ाई और काली-टीलो आदि शामिल थे। क्या आप भी यह खेल खेलते हैं। आपके परिवेश में इन खेलों के लिए कौन-से शब्द प्रचलन में हैं। इनके अतिरिक्त आप जो खेल खेलते हैं उन पर चर्चा कीजिए।
- स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भी सक्रिय भागीदारी रही है। उनके बारे में जानकारी प्राप्त कीजिए और उनमें से किसी एक पर प्रोजेक्ट तैयार कीजिए।

शब्द-संपदा

अहंवादी	–	घमंडी
भग्नावशेष	–	खंडहर (टूटे-फूटे हिस्से)
विस्फारित	–	और अधिक फैलना (बढ़ाना)
आक्रांत	–	कष्टग्रस्त
निषिद्ध	–	जिस पर रोक लगाई गई हो
वर्चस्व	–	दबदबा
राजेंद्र	–	यहाँ हिंदी के प्रमुख कथाकार एवं हंस पत्रिका के संपादक राजेंद्र यादव के बारे में कहा गया है
महाभोज	–	मन्नू भंडारी का चर्चित उपन्यास है। दा साहब उसके प्रमुख पात्र हैं

नमूने के तौर पर यहाँ 9 वर्षीय शिवांक की डायरी का एक पन्ना दिया जा रहा है–

30 मार्च, 2001 शुक्रवार
आज सुबह पापा ने जल्दी से मुझे उठाया और कहा, "देखो-देखो, बारिश हो रही है, ओले गिर रहे हैं। बहुत ठंड पड़ रही है।" फिर मैं जल्दी से उठा और पापा से कहा, "दीदी को भी उठाओ।" फिर हमने देखा कि हमारे घर के सामने वाले ग्राउंड में हरी-हरी घास पर सफ़ेद-सफ़ेद ओले गिर रहे थे। ऐसा लग रहा था किसी ने चमेली के फूल गिरा रखे हैं। बहुत अच्छा लग रहा था। ओले पड़ रहे थे। बारिश हो रही थी, चिड़िया भाग रही थी, कौए परेशान थे, पेड़ काँप रहे थे, बिजली चमक रही थी, बादल डरा रहे थे। एक चिड़िया हमारी खिड़की पर डरी-डरी बैठी थी। बहुत देर तक बैठी रही। फिर उड़ गई। अभी तक कोई बच्चा खेलने नहीं निकला। इसलिए मैं आज जल्दी डायरी लिख रहा हूँ। सुबह के दस बजे हैं। मैं अपना सीरियल देखने जा रहा हूँ। आज मेरा न्यू इंक पेन और पेंसिल बॉक्स आया। आज दोपहर को धूप निकली, फिर हम खेलने निकले। आजकल हम लोग मिट्टी के गोले बना के सुखा देते हैं फिर हम उनके ऊपर पेंटिंग करते हैं उसके बाद फिर उनसे खेलते हैं।

जानिए लँगड़ी की कुश्ती कैसे खेली जाती है–

एक स्थान में बीच की लाइन के बराबर फासले पर दो लाइनें खींची जाती हैं। दो खिलाड़ी बीच की लाइन पर आकर लँगड़ी बाँधकर अपने मुकाबले वाले को अपनी-अपनी लाइन के पार खींच ले जाने की कोशिश करते हैं। जिसकी लँगड़ी टूट जाती है अथवा जो खिंच जाता है उसकी हार होती है। यह खेल टोलियों में भी खेला जाता है। दिए हुए समय के अंदर जिस टोली के अधिक बच्चे लँगड़ी तोड़ देते हैं अथवा खिंच जाते हैं उस टोली की हार होती है।

15

महावीरप्रसाद द्विवेदी

महावीरप्रसाद **द्विवेदी** का जन्म सन् 1864 में ग्राम दौलतपुर, ज़िला रायबरेली (उ.प्र.) में हुआ। परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण स्कूली शिक्षा पूरी कर उन्होंने रेलवे में नौकरी कर ली। बाद में उस नौकरी से इस्तीफ़ा देकर सन् 1903 में प्रसिद्ध हिंदी मासिक पत्रिका **सरस्वती** का संपादन शुरू किया और सन् 1920 तक उसके संपादन से जुड़े रहे। सन् 1938 में उनका देहांत हो गया।

महावीरप्रसाद द्विवेदी केवल एक व्यक्ति नहीं थे वे एक संस्था थे जिससे परिचित होना हिंदी साहित्य के गौरवशाली अध्याय से परिचित होना है। वे हिंदी के पहले व्यवस्थित संपादक, भाषावैज्ञानिक, इतिहासकार, पुरातत्ववेत्ता, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, वैज्ञानिक चिंतन एवं लेखन के स्थापक, समालोचक और अनुवादक थे। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं–**रसज्ञ रंजन**, **साहित्य-सीकर**, **साहित्य-संदर्भ**, **अद्‌भुत आलाप** (निबंध संग्रह)। **संपत्तिशास्त्र** उनकी अर्थशास्त्र से संबंधित पुस्तक है। **महिला मोद** महिला उपयोगी पुस्तक है तो **आध्यात्मिकी** दर्शन की। **द्विवेदी काव्य माला** में उनकी कविताएँ हैं। उनका संपूर्ण साहित्य **महावीरप्रसाद द्विवेदी रचनावली** के पंद्रह खंडों में प्रकाशित है।

महावीरप्रसाद द्विवेदी के बारे में समझा जाता रहा है कि उन्होंने हिंदी गद्य की भाषा का परिष्कार किया और लेखकों की सुविधा के लिए व्याकरण और वर्तनी के नियम स्थिर किए। कविता की भाषा के रूप में भी ब्रज भाषा के बदले खड़ी बोली को प्रतिष्ठित किया। युग निर्माता महावीरप्रसाद द्विवेदी ने स्वाधीनता की चेतना विकसित करने के लिए स्वदेशी चिंतन को व्यापक बनाया। उन्होंने **सरस्वती** के

माध्यम से पत्रकारिता का श्रेष्ठ स्वरूप सामने रखा। हिंदी में पहली बार समालोचना को स्थापित करने का श्रेय भी उनको जाता है। उन्होंने भारतीय पुरातत्व एवं इतिहास पर खोजपरक कार्य किए। कुल मिलाकर उनके कार्यों का मूल्यांकन व्यापक हिंदी नवजागरण के संदर्भ में ही संभव है।

विद्वता एवं बहुज्ञता के साथ सरसता उनके लेखन की प्रमुख विशेषता है। उनके लेखन में व्यंग्य की छटा देखते ही बनती है।

आज हमारे समाज में लड़कियाँ शिक्षा पाने एवं कार्यक्षेत्र में क्षमता दर्शाने में लड़कों से बिलकुल भी पीछे नहीं हैं किंतु यहाँ तक पहुँचने के लिए अनेक स्त्री-पुरुषों ने लंबा संघर्ष किया। नवजागरण काल के चिंतकों ने मात्र स्त्री-शिक्षा ही नहीं बल्कि समाज में जनतांत्रिक एवं वैज्ञानिक चेतना के संपूर्ण विकास के लिए अलख जगाया। द्विवेदी जी का यह लेख उन सभी पुरातनपंथी विचारों से लोहा लेता है जो स्त्री-शिक्षा को व्यर्थ अथवा समाज के विघटन का कारण मानते थे। इस लेख की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें परंपरा को ज्यों का त्यों नहीं स्वीकारा गया है, बल्कि विवेक से फैसला लेकर ग्रहण करने योग्य को लेने की बात की गई है और परंपरा का जो हिस्सा सड़-गल चुका है, उसे रूढ़ि मानकर छोड़ देने की। यह विवेकपूर्ण दृष्टि संपूर्ण नवजागरण काल की विशेषता है। आज इस निबंध का अनेक दृष्टियों से ऐतिहासिक महत्त्व है।

*यह लेख पहली बार सितंबर 1914 की **सरस्वती** में **पढ़े लिखों का पांडित्य** शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। बाद में द्विवेदी जी ने इसे **महिला मोद** पुस्तक में शामिल करते समय इसका शीर्षक **स्त्री-शिक्षा के विरोधी कुतर्कों का खंडन** रख दिया था। इस निबंध की भाषा और वर्तनी को हमने संशोधित करने का प्रयास नहीं किया है।*

स्त्री-शिक्षा के विरोधी कुतर्कों का खंडन

बड़े शोक की बात है, आजकल भी ऐसे लोग विद्यमान हैं जो स्त्रियों को पढ़ाना उनके और गृह-सुख के नाश का कारण समझते हैं। और, लोग भी ऐसे-वैसे नहीं, सुशिक्षित लोग–ऐसे लोग जिन्होंने बड़े-बड़े स्कूलों और शायद कॉलिजों में भी शिक्षा पाई है, जो धर्म–शास्त्र और संस्कृत के ग्रंथ साहित्य से परिचय रखते हैं, और जिनका पेशा कुशिक्षितों को सुशिक्षित करना, कुमार्गगामियों को सुमार्गगामी बनाना और अधार्मिकों को धर्मतत्त्व समझाना है। उनकी दलीलें सुन लीजिए–

1. पुराने संस्कृत-कवियों के नाटकों में कुलीन स्त्रियों से अपढ़ों की भाषा में बातें कराई गई हैं। इससे प्रमाणित है कि इस देश में स्त्रियों को पढ़ाने की चाल न थी। होती तो इतिहास-पुराणादि में उनको पढ़ाने की नियमबद्ध प्रणाली ज़रूर लिखी मिलती।

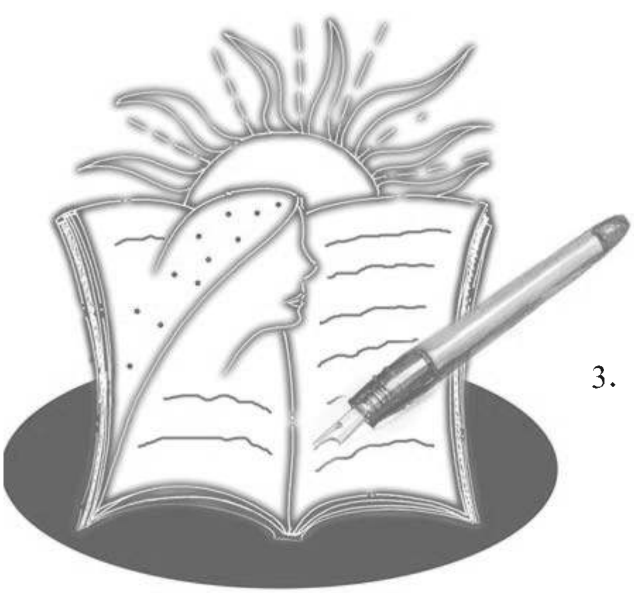

2. स्त्रियों को पढ़ाने से अनर्थ होते हैं। शकुंतला इतना कम पढ़ी थी कि गँवारों की भाषा में मुश्किल से एक छोटा-सा श्लोक वह लिख सकी थी। तिस पर भी उसकी इस इतनी कम शिक्षा ने भी अनर्थ कर डाला। शकुंतला ने जो कटु वाक्य दुष्यंत को कहे, वह इस पढ़ाई का ही दुष्परिणाम था।
3. जिस भाषा में शकुंतला ने श्लोक रचा था वह अपढ़ों की भाषा थी। अतएव नागरिकों की भाषा की बात तो दूर रही, अपढ़ गँवारों की भी भाषा पढ़ाना स्त्रियों को बरबाद करना है।

इस तरह की दलीलों का सबसे अधिक प्रभावशाली उत्तर उपेक्षा ही है। तथापि हम दो-चार बातें लिखे देते हैं।

नाटकों में स्त्रियों का प्राकृत बोलना उनके अपढ़ होने का प्रमाण नहीं। अधिक से अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि वे संस्कृत न बोल सकती थीं। संस्कृत न बोल सकना न अपढ़ होने का सबूत है और न गँवार होने का। अच्छा तो उत्तररामचरित में ऋषियों की वेदांतवादिनी पत्नियाँ कौन-सी भाषा बोलती थीं? उनकी संस्कृत क्या कोई गँवारी संस्कृत थी? भवभूति और कालिदास आदि के नाटक जिस ज़माने के हैं उस ज़माने में शिक्षितों का समस्त समुदाय संस्कृत ही बोलता था, इसका प्रमाण पहले कोई दे ले तब प्राकृत बोलने वाली स्त्रियों को अपढ़ बताने का साहस करे। इसका क्या सबूत कि उस ज़माने में बोलचाल की भाषा प्राकृत न थी? सबूत तो प्राकृत के चलन के ही मिलते हैं। प्राकृत यदि उस समय की प्रचलित भाषा न होती तो बौद्धों तथा जैनों के हज़ारों ग्रंथ उसमें क्यों लिखे जाते, और भगवान शाक्य मुनि तथा उनके चेले प्राकृत ही में क्यों धर्मोपदेश देते? बौद्धों के त्रिपिटक ग्रंथ की रचना प्राकृत में किए जाने का एकमात्र कारण यही है कि उस ज़माने में प्राकृत ही सर्वसाधारण की भाषा थी। अतएव प्राकृत बोलना और लिखना अपढ़ और अशिक्षित होने का चिह्न नहीं। जिन पंडितों ने गाथा-सप्तशती, सेतुबंध-महाकाव्य और कुमारपालचरित आदि ग्रंथ प्राकृत में बनाए हैं, वे यदि अपढ़ और गँवार थे तो हिंदी के प्रसिद्ध से भी प्रसिद्ध अखबार का संपादक इस ज़माने में अपढ़ और गँवार कहा जा सकता है; क्योंकि वह अपने ज़माने की प्रचलित भाषा में अखबार लिखता है। हिंदी, बाँग्ला आदि भाषाएँ आजकल की प्राकृत हैं, शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री और पाली आदि भाषाएँ उस ज़माने की थीं। प्राकृत पढ़कर भी उस ज़माने में लोग उसी तरह सभ्य, शिक्षित और पंडित हो सकते थे जिस तरह कि हिंदी, बाँग्ला, मराठी आदि भाषाएँ पढ़कर इस ज़माने में हम हो सकते हैं। फिर प्राकृत बोलना अपढ़ होने का सबूत है, यह बात कैसे मानी जा सकती है?

जिस समय आचार्यों ने नाट्यशास्त्र-संबंधी नियम बनाए थे उस समय सर्वसाधारण की भाषा संस्कृत न थी। चुने हुए लोग ही संस्कृत बोलते या बोल सकते थे। इसी से उन्होंने उनकी भाषा संस्कृत और दूसरे लोगों तथा स्त्रियों की भाषा प्राकृत रखने का नियम कर दिया।

पुराने ज़माने में स्त्रियों के लिए कोई विश्वविद्यालय न था। फिर नियमबद्ध प्रणाली का उल्लेख आदि पुराणों में न मिले तो क्या आश्चर्य। और, उल्लेख उसका कहीं रहा हो, पर नष्ट हो गया हो तो? पुराने ज़माने में विमान उड़ते थे। बताइए उनके बनाने की विद्या सिखाने वाला कोई शास्त्र! बड़े-बड़े जहाज़ों पर सवार होकर लोग द्वीपांतरों को जाते थे। दिखाइए, जहाज़ बनाने की नियमबद्ध प्रणाली के दर्शक ग्रंथ! पुराणादि में विमानों और जहाज़ों द्वारा की गई यात्राओं के हवाले देखकर उनका अस्तित्व तो हम बड़े गर्व से

स्वीकार करते हैं, परंतु पुराने ग्रंथों में अनेक प्रगल्भ पंडिताओं के नामोल्लेख देखकर भी कुछ लोग भारत की तत्कालीन स्त्रियों को मूर्ख, अपढ़ और गँवार बताते हैं! इस तर्कशास्त्रज्ञता और इस न्यायशीलता की बलिहारी! वेदों को प्राय: सभी हिंदू ईश्वर-कृत मानते हैं। सो ईश्वर तो वेद-मंत्रों की रचना अथवा उनका दर्शन विश्ववरा आदि स्त्रियों से करावे और हम उन्हें ककहरा पढ़ाना भी पाप समझें। शीला और विज्जा आदि कौन थीं? वे स्त्री थीं या नहीं? बड़े-बड़े पुरुष-कवियों से आदृत हुई हैं या नहीं? शार्ङ्गधर-पद्धति में उनकी कविता के नमूने हैं या नहीं? बौद्ध-ग्रंथ त्रिपिटक के अंतर्गत थेरीगाथा में जिन सैकड़ों स्त्रियों की पद्य-रचना उद्धृत है वे क्या अपढ़ थीं? जिस भारत में कुमारिकाओं को चित्र बनाने, नाचने, गाने, बजाने, फूल चुनने, हार गूँथने, पैर मलने तक की कला सीखने की आज्ञा थी उनको लिखने-पढ़ने की आज्ञा न थी। कौन विज्ञ ऐसी बात मुख से निकालेगा? और, कोई निकाले भी तो मानेगा कौन?

अत्रि की पत्नी पत्नी-धर्म पर व्याख्यान देते समय घंटों पांडित्य प्रकट करे, गार्गी बड़े-बड़े ब्रह्मवादियों को हरा दे, मंडन मिश्र की सहधर्मचारिणी शंकराचार्य के छक्के छुड़ा दे! गज़ब! इससे अधिक भयंकर बात और क्या हो सकेगी! यह सब पापी पढ़ने का अपराध है। न वे पढ़तीं, न वे पूजनीय पुरुषों का मुकाबला करतीं। यह सारा दुराचार स्त्रियों को पढ़ाने ही का कुफल है। समझे। स्त्रियों के लिए पढ़ना कालकूट और पुरुषों के लिए पीयूष का घूँट! ऐसी ही दलीलों और दृष्टांतों के आधार पर कुछ लोग स्त्रियों को अपढ़ रखकर भारतवर्ष का गौरव बढ़ाना चाहते हैं।

मान लीजिए कि पुराने ज़माने में भारत की एक भी स्त्री पढ़ी-लिखी न थी। न सही। उस समय स्त्रियों को पढ़ाने की ज़रूरत न समझी गई होगी। पर अब तो है। अतएव पढ़ाना चाहिए। हमने सैकड़ों पुराने नियमों, आदेशों और प्रणालियों को तोड़ दिया है या नहीं? तो, चलिए, स्त्रियों को अपढ़ रखने की इस पुरानी चाल को भी तोड़ दें। हमारी प्रार्थना तो यह है कि स्त्री-शिक्षा के विपक्षियों को क्षणभर के लिए भी इस कल्पना को अपने मन में स्थान न देना चाहिए कि पुराने ज़माने में यहाँ की सारी स्त्रियाँ अपढ़ थीं अथवा उन्हें पढ़ने की आज्ञा न थी। जो लोग पुराणों में पढ़ी-लिखी स्त्रियों के हवाले माँगते हैं उन्हें श्रीमद्‌भागवत, दशमस्कंध, के उत्तरार्द्ध का त्रेपनवाँ अध्याय पढ़ना चाहिए। उसमें रुक्मिणी-हरण की कथा है। रुक्मिणी ने जो एक लंबा-चौड़ा पत्र एकांत में लिखकर, एक ब्राह्मण के हाथ, श्रीकृष्ण को भेजा था वह तो प्राकृत में न था। उसके प्राकृत में होने का उल्लेख भागवत में तो नहीं। उसमें रुक्मिणी ने जो पांडित्य दिखाया है वह उसके अपढ़ और अल्पज्ञ होने अथवा गँवारपन का सूचक नहीं। पुराने ढंग के पक्के सनातन-धर्मावलंबियों की दृष्टि में तो नाटकों की अपेक्षा भागवत का महत्त्व बहुत ही अधिक होना चाहिए। इस दशा में यदि उनमें से कोई यह कहे कि सभी

प्राक्कालीन स्त्रियाँ अपढ़ होती थीं तो उसकी बात पर विश्वास करने की ज़रूरत नहीं। भागवत की बात यदि पुराणकार या कवि की कल्पना मानी जाए तो नाटकों की बात उससे भी गई-बीती समझी जानी चाहिए।

स्त्रियों का किया हुआ अनर्थ यदि पढ़ाने ही का परिणाम है तो पुरुषों का किया हुआ अनर्थ भी उनकी विद्या और शिक्षा ही का परिणाम समझना चाहिए। बम के गोले फेंकना, नरहत्या करना, डाके डालना, चोरियाँ करना, घूस लेना–ये सब यदि पढ़ने-लिखने ही का परिणाम हो तो सारे कॉलिज, स्कूल और पाठशालाएँ बंद हो जानी चाहिए। परंतु विक्षिप्तों, बातव्यथितों और ग्रहग्रस्तों के सिवा ऐसी दलीलें पेश करने वाले बहुत ही कम मिलेंगे। शकुंतला ने दुष्यंत को कटु वाक्य कहकर कौन-सी अस्वाभाविकता दिखाई? क्या वह यह कहती कि–"आर्य पुत्र, शाबाश! बड़ा अच्छा काम किया जो मेरे साथ गांधर्व-विवाह करके मुकर गए। नीति, न्याय, सदाचार और धर्म की आप प्रत्यक्ष मूर्ति हैं!" पत्नी पर घोर से घोर अत्याचार करके जो उससे ऐसी आशा रखते हैं वे मनुष्य-स्वभाव का किंचित् भी ज्ञान नहीं रखते। सीता से अधिक साध्वी स्त्री नहीं सुनी गई। जिस कवि ने, शकुंतला नाटक में, अपमानित हुई शकुंतला से दुष्यंत के विषय में दुर्वाक्य कहाया है उसी ने परित्यक्त होने पर सीता से रामचंद्र के विषय में क्या कहाया है, सुनिए–

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा–
वह्नौ विशुद्धामति यत्समक्षम्।
मां लोकवाद श्रवणादहासीः
श्रुतस्य तत्किं सदृशं कुलस्य?

लक्ष्मण! ज़रा उस राजा से कह देना कि मैंने तो तुम्हारी आँख के सामने ही आग में कूदकर अपनी विशुद्धता साबित कर दी थी। तिस पर भी, लोगों के मुख से निकला मिथ्यावाद सुनकर ही तुमने मुझे छोड़ दिया। क्या यह बात तुम्हारे कुल के अनुरूप है? अथवा क्या यह तुम्हारी विद्वता या महत्ता को शोभा देनेवाली है?

सीता का यह संदेश कटु नहीं तो क्या मीठा है? 'राजा' मात्र कहकर उनके पास अपना संदेसा भेजा। यह उक्ति न किसी गँवार स्त्री की; किंतु महाब्रह्मज्ञानी राजा जनक की लड़की और मन्वादि महर्षियों के धर्मशास्त्रों का ज्ञान रखने वाली रानी की–

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्
स एव धर्मो मनुना प्रणीतः

सीता की धर्मशास्त्रज्ञता का यह प्रमाण, वहीं, आगे चलकर, कुछ ही दूर पर, कवि ने दिया है। सीता-परित्याग के कारण वाल्मीकि के समान शांत, नीतिज्ञ और क्षमाशील तपस्वी तक ने–"अस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे"–कहकर रामचंद्र पर क्रोध प्रकट किया है। अतएव,

शकुंतला की तरह, अपने परित्याग को अन्याय समझने वाली सीता का रामचंद्र के विषय में, कटुवाक्य कहना सर्वथा स्वाभाविक है। न यह पढ़ने-लिखने का परिणाम है न गँवारपन का, न अकुलीनता का।

पढ़ने-लिखने में स्वयं कोई बात ऐसी नहीं जिससे अनर्थ हो सके। अनर्थ का बीज उसमें हरगिज़ नहीं। अनर्थ पुरुषों से भी होते हैं। अपढ़ों और पढ़े-लिखों, दोनों से। अनर्थ, दुराचार और पापाचार के कारण और ही होते हैं और वे व्यक्ति-विशेष का चाल-चलन देखकर जाने भी जा सकते हैं। अतएव स्त्रियों को अवश्य पढ़ाना चाहिए।

जो लोग यह कहते हैं कि पुराने ज़माने में यहाँ स्त्रियाँ न पढ़ती थीं अथवा उन्हें पढ़ने की मुमानियत थी वे या तो इतिहास से अभिज्ञता नहीं रखते या जान-बूझकर लोगों को धोखा देते हैं। समाज की दृष्टि में ऐसे लोग दंडनीय हैं। क्योंकि स्त्रियों को निरक्षर रखने का उपदेश देना समाज का अपकार और अपराध करना है—समाज की उन्नति में बाधा डालना है।

'शिक्षा' बहुत व्यापक शब्द है। उसमें सीखने योग्य अनेक विषयों का समावेश हो सकता है। पढ़ना-लिखना भी उसी के अंतर्गत है। इस देश की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली अच्छी नहीं। इस कारण यदि कोई स्त्रियों को पढ़ाना अनर्थकारी समझे तो उसे उस प्रणाली का संशोधन करना या कराना चाहिए, खुद पढ़ने-लिखने को दोष न देना चाहिए। लड़कों ही की शिक्षा-प्रणाली कौन-सी बड़ी अच्छी है। प्रणाली बुरी होने के कारण क्या किसी ने यह राय दी है कि सारे स्कूल और कॉलिज बंद कर दिए जाएँ? आप खुशी से लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा की प्रणाली का संशोधन कीजिए। उन्हें क्या पढ़ाना चाहिए, कितना पढ़ाना चाहिए, किस तरह की शिक्षा देना चाहिए और कहाँ पर देना चाहिए—घर में या स्कूल में—इन सब बातों पर बहस कीजिए, विचार कीजिए, जी में आवे सो कीजिए; पर परमेश्वर के लिए यह न कहिए कि स्वयं पढ़ने-लिखने में कोई दोष है—वह अनर्थकर है, वह अभिमान का उत्पादक है, वह गृह-सुख का नाश करने वाला है। ऐसा कहना सोलहों आने मिथ्या है।

प्रश्न-अभ्यास

1. कुछ पुरातन पंथी लोग स्त्रियों की शिक्षा के विरोधी थे। द्विवेदी जी ने क्या-क्या तर्क देकर स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया?
2. 'स्त्रियों को पढ़ाने से अनर्थ होते हैं'—कुतर्कवादियों की इस दलील का खंडन द्विवेदी जी ने कैसे किया है, अपने शब्दों में लिखिए।

3. द्विवेदी जी ने स्त्री-शिक्षा विरोधी कुतर्कों का खंडन करने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया है-जैसे 'यह सब पापी पढ़ने का अपराध है। न वे पढ़तीं, न वे पूजनीय पुरुषों का मुकाबला करतीं।' आप ऐसे अन्य अंशों को निबंध में से छाँटकर समझिए और लिखिए।
4. पुराने समय में स्त्रियों द्वारा प्राकृत भाषा में बोलना क्या उनके अपढ़ होने का सबूत है—पाठ के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
5. परंपरा के उन्हीं पक्षों को स्वीकार किया जाना चाहिए जो स्त्री-पुरुष समानता को बढ़ाते हों-तर्क सहित उत्तर दीजिए।
6. तब की शिक्षा प्रणाली और अब की शिक्षा प्रणाली में क्या अंतर है? स्पष्ट करें।

रचना और अभिव्यक्ति

7. महावीरप्रसाद द्विवेदी का निबंध उनकी दूरगामी और खुली सोच का परिचायक है, कैसे?
8. द्विवेदी जी की भाषा-शैली पर एक अनुच्छेद लिखिए।

भाषा-अध्ययन

9. निम्नलिखित अनेकार्थी शब्दों को ऐसे वाक्यों में प्रयुक्त कीजिए जिनमें उनके एकाधिक अर्थ स्पष्ट हों—
   चाल, दल, पत्र, हरा, पर, फल, कुल

पाठेतर सक्रियता

- अपनी दादी, नानी और माँ से बातचीत कीजिए और (स्त्री-शिक्षा संबंधी) उस समय की स्थितियों का पता लगाइए और अपनी स्थितियों से तुलना करते हुए निबंध लिखिए। चाहें तो उसके साथ तसवीरें भी चिपकाइए।
- लड़कियों की शिक्षा के प्रति परिवार और समाज में जागरूकता आए—इसके लिए आप क्या-क्या करेंगे?
- स्त्री-शिक्षा पर एक पोस्टर तैयार कीजिए।
- स्त्री-शिक्षा पर एक नुक्कड़ नाटक तैयार कर उसे प्रस्तुत कीजिए।

शब्द-संपदा

विद्यमान	–	उपस्थित
कुमार्गगामी	–	बुरी राह पर चलने वाले
सुमार्गगामी	–	अच्छी राह पर चलने वाले
अधार्मिक	–	धर्म से संबंध न रखने वाला
धर्मतत्त्व	–	धर्म का सार

दलीलें	–	तर्क
अनर्थ	–	बुरा, अर्थहीन
अपढ़ों	–	अनपढ़ों
उपेक्षा	–	ध्यान न देना
प्राकृत	–	एक प्राचीन भाषा
वेदांतवादिनी	–	वेदांत दर्शन पर बोलने वाली
दर्शक ग्रंथ	–	जानकारी देने वाली या दिखाने वाली पुस्तकें
तत्कालीन	–	उस समय का
तर्कशास्त्रज्ञता	–	तर्कशास्त्र को जानना
न्यायशीलता	–	न्याय के अनुसार आचरण करना
कुतर्क	–	अनुचित तर्क
खंडन	–	दूसरे के मत का युक्तिपूर्वक निराकरण
प्रगल्भ	–	प्रतिभावान
नामोल्लेख	–	नाम का उल्लेख करना
आदृत	–	आदर या सम्मान पाया, सम्मानित
विज्ञ	–	समझदार, विद्वान
ब्रह्मवादी	–	वेद पढ़ने-पढ़ाने वाला
दुराचार	–	निंदनीय आचरण
सहधर्मचारिणी	–	पत्नी
कालकूट	–	ज़हर
पीयूष	–	अमृत
दृष्टांत	–	उदाहरण, मिसाल
अल्पज्ञ	–	थोड़ा जानने वाला
प्राक्कालीन	–	पुरानी
व्यभिचार	–	पाप
विक्षिप्त	–	पागल
बात व्यथित	–	बातों से दुखी होने वाले
ग्रह ग्रस्त	–	पाप ग्रह से प्रभावित
किंचित्	–	थोड़ा
दुर्वाक्य	–	निंदा करने वाला वाक्य या बात
परित्यक्त	–	पूरे तौर पर छोड़ा हुआ
मिथ्यावाद	–	झूठी बात
कलंकारोपण	–	दोष मढ़ना, दोषी ठहराना

निर्भर्त्सना – तिरस्कार, निंदा
नीतिज्ञ – नीति जानने वाला
हरगिज़ – किसी हालत में
मुमानियत – रोक, मनाही
अभिज्ञता – जानकारी, ज्ञान
अपकार – अहित

यह भी जानें

भवभूति – संस्कृत के प्रधान नाटककार हैं। इनके तीन प्रसिद्ध ग्रंथ वीररचित, उत्तररामचरित और मालतीमाधव हैं। भवभूति करुणरस के प्रमुख लेखक थे।

विश्ववरा – अत्रिगोत्र की स्त्री। ये ऋग्वेद के पाँचवें मंडल 28वें सूक्त की एक में से छठी ऋक् की ऋषि थीं।

शीला – कौरिडन्य मुनि की पत्नी का नाम।

थेरीगाथा – बौद्ध भिक्षुणियों की पद्य रचना इसमें संकलित है।

अनुसूया – अत्रि मुनि की पत्नी और दक्ष प्रजापति की कन्या।

गार्गी – वैदिक समय की एक पंडिता ऋषिपुत्री। इनके पिता का नाम गर्ग मुनि था। मिथिला के जनकराज की सभा में इन्होंने पंडितों के सामने याज्ञवल्क्य के साथ वेदांत शास्त्र विषय पर शास्त्रार्थ किया था।

गाथा सप्तशती – प्राकृत भाषा का ग्रंथ जिसे हाल द्वारा रचित माना जाता है।

कुमारपाल चरित्र – एक ऐतिहासिक ग्रंथ है जिसे 12वीं शताब्दी के अंत में अज्ञातनामा कवि ने अनहल के राजा कुमारपाल के लिए लिखा था। इसमें ब्रह्मा से लेकर राजा कुमारपाल तक बौद्ध राजाओं की वंशावली का वर्णन है।

त्रिपिटक ग्रंथ – गौतम बुद्ध ने भिक्षु-भिक्षुणियों को अपने सारे उपदेश मौखिक दिए थे। उन उपदेशों को उनके शिष्यों ने कंठस्थ कर लिया था और बाद में उन्हें त्रिपिटक के रूप में लेखबद्ध किया गया। वे तीन त्रिपिटक हैं–सुत या सूत्र पिटक, विनय पिटक और अभिधर्म पिटक।

शाक्य मुनि – शक्यवंशीय होने के कारण गौतम बुद्ध को शाक्य मुनि भी कहा जाता है।

नाट्यशास्त्र – भरतमुनि रचित काव्यशास्त्र संबंधी संस्कृत के इस ग्रंथ में मुख्यतः रूपक (नाटक) का शास्त्रीय विवेचन किया गया है। इसकी रचना 300 ईसा पूर्व मानी जाती है।

कालिदास – संस्कृत के महान कवियों में कालिदास की गणना की जाती है। उन्होंने **कुमारसंभव**, **रघुवंश** (महाकाव्य), **ऋतु संहार**, **मेघदूत** (खंडकाव्य), **विक्रमोर्वशीय**, **मालविकाग्निमित्र** और **अभिज्ञान शाकुंतलम्** (नाटक) की रचना की।

आजादी के आंदोलन से सक्रिय रूप से जुड़ी पंडिता रमाबाई ने स्त्रियों की शिक्षा एवं उनके शोषण के विरुद्ध जो आवाज़ उठाई उसकी एक झलक यहाँ प्रस्तुत है। आप ऐसे अन्य लोगों के योगदान के बारे में पढ़िए और मित्रों से चर्चा कीजिए–

पंडिता रमाबाई

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का पाँचवाँ अधिवेशन 1889 में मुंबई में आयोजित हुआ था। खचाखच भरे हॉल में देश भर के नेता एकत्र हुए थे।

एक सुंदर युवती अधिवेशन को संबोधित करने के लिए उठी। उसकी आँखों में तेज और उसके कांतिमय चेहरे पर प्रतिभा झलक रही थी। इससे पहले कांग्रेस अधिवेशनों में ऐसा दृश्य देखने में नहीं आया था। हॉल में लाउडस्पीकर न थे। पीछे बैठे हुए लोग उस युवती की आवाज़ नहीं सुन पा रहे थे। वे आगे की ओर बढ़ने लगे। यह देखकर युवती ने कहा, "भाइयो, मुझे क्षमा कीजिए। मेरी आवाज़ आप तक नहीं पहुँच पा रही है। लेकिन इस पर मुझे आश्चर्य नहीं है। क्या आपने शताब्दियों तक कभी किसी महिला की आवाज़ सुनने की कोशिश की? क्या आपने उसे इतनी शक्ति प्रदान की कि वह अपनी आवाज़ को आप तक पहुँचने योग्य बना सके?"

प्रतिनिधियों के पास इन प्रश्नों के उत्तर न थे।

इस साहसी युवती को अभी और बहुत कुछ कहना था। उसका नाम पंडिता रमाबाई था। उस दिन तक स्त्रियों ने कांग्रेस के अधिवेशनों में शायद ही कभी भाग लिया हो। पंडिता रमाबाई के प्रयास से 1889 के उस अधिवेशन में 9 महिला प्रतिनिधि सम्मिलित हुई थीं।

वे एक मूक प्रतिनिधि नहीं बन सकती थीं। विधवाओं को सिर मुँडवाए जाने की प्रथा के विरोध में रखे गए प्रस्ताव पर उन्होंने एक ज़ोरदार भाषण दिया। "आप पुरुष लोग ब्रिटिश संसद में प्रतिनिधित्व की माँग कर रहे हैं जिससे कि आप भारतीय जनता की राय वहाँ पर अभिव्यक्त कर सकें। इस पंडाल में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए चीख-चिल्ला रहे हैं, तब आप अपने परिवारों में वैसी ही स्वतंत्रता महिलाओं को क्यों नहीं देते? आप किसी महिला को उसके विधवा होते ही कुरूप और दूसरों पर निर्भर होने के लिए क्यों विवश करते हैं? क्या कोई विधुर भी वैसा करता है? उसे अपनी इच्छा के अनुसार जीने की स्वतंत्रता है। तब स्त्रियों को वैसी स्वतंत्रता क्यों नहीं मिलती?"

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पंडिता रमाबाई ने भारत में नारी-मुक्ति आंदोलन की नींव डाली।

वे बचपन से ही अन्याय सहन नहीं कर पाती थीं। एक दिन उन्होंने नौ वर्ष की एक छोटी-सी लड़की को उसके पति के शव के साथ भस्म किए जाने से बचाने की चेष्टा की। "यदि स्त्री के लिए भस्म होकर सती बनना अनिवार्य है तो क्या पुरुष भी पत्नी की मृत्यु के बाद सता होते हैं?" रौबपूर्वक पूछे गए इस प्रश्न का उस लड़की की माँ के पास कोई उत्तर न था। उसने केवल इतना कहा कि "यह पुरुषों की दुनिया है। कानून वे ही बनाते हैं, स्त्रियों को तो उनका पालन भर करना होता है।" रमाबाई ने पलटकर पूछा, "स्त्रियाँ ऐसे कानूनों को सहन क्यों करती हैं? मैं जब बड़ी हो जाऊँगी तो ऐसे कानूनों के विरुद्ध संघर्ष करूँगी।" सचमुच उन्होंने पुरुषों द्वारा महिलाओं के प्रत्येक प्रकार के शोषण के विरुद्ध संघर्ष किया।

16
यतींद्र मिश्र

यतींद्र **मिश्र** का जन्म सन् 1977 में अयोध्या (उत्तर प्रदेश) में हुआ। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ से हिंदी में एम.ए. किया। वे आजकल स्वतंत्र लेखन के साथ अर्द्धवार्षिक **सहित** पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। सन् 1999 में साहित्य और कलाओं के संवर्द्धन और अनुशीलन के लिए एक सांस्कृतिक न्यास 'विमला देवी फाउंडेशन' का संचालन भी कर रहे हैं।

यतींद्र मिश्र के तीन काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं–**यदा-कदा, अयोध्या तथा अन्य कविताएँ**, **ड्योढ़ी पर आलाप**। इसके अलावा शास्त्रीय गायिका गिरिजा देवी के जीवन और संगीत साधना पर एक पुस्तक **गिरिजा** लिखी। रीतिकाल के अंतिम प्रतिनिधि कवि द्विजदेव की ग्रंथावली (2000) का सह-संपादन किया। कुँवर नारायण पर केंद्रित दो पुस्तकों के अलावा स्पिक मैके के लिए विरासत-2001 के कार्यक्रम के लिए रूपंकर कलाओं पर केंद्रित **थाती** का संपादन भी किया। युवा रचनाकार यतींद्र मिश्र को भारत भूषण अग्रवाल कविता सम्मान, हेमंत स्मृति कविता पुरस्कार, ऋतुराज सम्मान आदि कई पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। कविता, संगीत व अन्य ललित कलाओं के साथ-साथ समाज और संस्कृति के विविध क्षेत्रों में भी उनकी गहरी रुचि है।

***नौबतखाने में इबादत** प्रसिद्ध शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ पर रोचक शैली में लिखा गया व्यक्ति-चित्र है। यतींद्र मिश्र ने बिस्मिल्ला खाँ का परिचय तो दिया ही है, साथ ही उनकी रुचियों, उनके अंतर्मन की बुनावट, संगीत की साधना और लगन को संवेदनशील भाषा में व्यक्त किया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया गया है कि संगीत एक आराधना है। इसका विधि-विधान है। इसका शास्त्र है, इस शास्त्र से परिचय आवश्यक है, सिर्फ़ परिचय ही नहीं उसका अभ्यास ज़रूरी है और अभ्यास के लिए गुरु-शिष्य परंपरा ज़रूरी है, पूर्ण तन्मयता ज़रूरी है, धैर्य ज़रूरी है, मंथन ज़रूरी है। वह लगन और धैर्य बिस्मिल्ला खाँ में रहा है। तभी 80 वर्ष की उम्र में भी उनकी साधना चलती रही है। यतींद्र मिश्र संगीत की शास्त्रीय परंपरा के गहरे जानकार हैं, इस पाठ में इसकी कई अनुगूँजें हैं जो पाठ को बार-बार पढ़ने के लिए आमंत्रित करती हैं। भाषा सहज, प्रवाहमयी तथा प्रसंगों और संदर्भों से भरी हुई है।*

नौबतखाने में इबादत

सन् 1916 से 1922 के आसपास की काशी। पंचगंगा घाट स्थित बालाजी मंदिर की ड्योढ़ी। ड्योढ़ी का नौबतखाना और नौबतखाने से निकलने वाली मंगलध्वनि।

अमीरुद्दीन अभी सिर्फ़ छः साल का है और बड़ा भाई शम्सुद्दीन नौ साल का। अमीरुद्दीन को पता नहीं है कि राग किस चिड़िया को कहते हैं। और ये लोग हैं मामूजान वगैरह जो बात-बात पर भीमपलासी और मुलतानी कहते रहते हैं। क्या वाज़िब मतलब हो सकता है इन शब्दों का, इस लिहाज से अभी उम्र नहीं है अमीरुद्दीन की, जान सके इन भारी शब्दों का वजन कितना होगा। गोया, इतना ज़रूर है कि अमीरुद्दीन व शम्सुद्दीन के मामाद्वय सादिक हुसैन तथा अलीबख्श देश के जाने-माने शहनाई वादक हैं। विभिन्न रियासतों के दरबार में बजाने जाते रहते हैं। रोज़नामचे में बालाजी का मंदिर सबसे ऊपर आता है। हर दिन की शुरुआत वहीं ड्योढ़ी पर होती है। मंदिर के विग्रहों को पता नहीं कितनी समझ है, जो रोज़ बदल-बदलकर मुलतानी, कल्याण, ललित और कभी भैरव रागों को सुनते रहते हैं। ये खानदानी पेशा है अलीबख्श के घर का। उनके अब्बाजान भी यहीं ड्योढ़ी पर शहनाई बजाते रहते हैं।

अमीरुद्दीन का जन्म डुमराँव, बिहार के एक संगीत प्रेमी परिवार में हुआ है। 5-6 वर्ष डुमराँव में बिताकर वह नाना के घर, ननिहाल काशी में आ गया है। डुमराँव का इतिहास में कोई स्थान बनता हो, ऐसा नहीं लगा कभी भी। पर यह ज़रूर है कि शहनाई और डुमराँव एक-दूसरे के लिए उपयोगी हैं। शहनाई बजाने के लिए रीड का प्रयोग होता है। रीड अंदर से पोली होती है जिसके सहारे शहनाई को फूँका जाता है। रीड, नरकट (एक प्रकार की घास) से बनाई जाती है जो डुमराँव में मुख्यतः सोन नदी के किनारों पर पाई जाती है। इतनी ही महत्ता है इस समय डुमराँव की जिसके कारण शहनाई जैसा वाद्य बजता है। फिर अमीरुद्दीन जो हम सबके प्रिय हैं, अपने उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ साहब हैं। उनका जन्म-स्थान भी डुमराँव ही है। इनके परदादा उस्ताद सलार हुसैन खाँ डुमराँव निवासी थे। बिस्मिल्ला खाँ उस्ताद पैगंबरबख्श खाँ और मिट्ठन के छोटे साहबजादे हैं।

अमीरुद्दीन की उम्र अभी 14 साल है। मसलन बिस्मिल्ला खाँ की उम्र अभी 14 साल है। वही काशी है। वही पुराना बालाजी का मंदिर जहाँ बिस्मिल्ला खाँ को नौबतखाने रियाज़ के लिए जाना पड़ता है। मगर एक रास्ता है बालाजी मंदिर तक जाने का। यह रास्ता रसूलनबाई और बतूलनबाई के यहाँ से होकर जाता है। इस रास्ते से अमीरुद्दीन को जाना अच्छा लगता है। इस रास्ते न जाने कितने तरह के बोल-बनाव कभी ठुमरी, कभी टप्पे, कभी दादरा के मार्फत ड्योढ़ी तक पहुँचते रहते हैं। रसूलन और बतूलन जब गाती हैं तब अमीरुद्दीन को खुशी मिलती है। अपने ढेरों साक्षात्कारों में बिस्मिल्ला खाँ साहब ने स्वीकार किया है कि उन्हें अपने जीवन के आरंभिक दिनों में संगीत के प्रति आसक्ति इन्हीं गायिका बहिनों को सुनकर मिली है। एक प्रकार से उनकी अबोध उम्र में अनुभव की स्लेट पर संगीत प्रेरणा की वर्णमाला रसूलनबाई और बतूलनबाई ने उकेरी है।

वैदिक इतिहास में शहनाई का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसे संगीत शास्त्रांतर्गत 'सुषिर-वाद्यों' में गिना जाता है। अरब देश में फूँककर बजाए जाने वाले वाद्य जिसमें नाड़ी (नरकट या रीड) होती है, को 'नय' बोलते हैं। शहनाई को 'शाहेनय' अर्थात् 'सुषिर वाद्यों में शाह' की उपाधि दी गई है। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तानसेन के द्वारा रची बंदिश, जो संगीत राग कल्पद्रुम से प्राप्त होती है, में शहनाई, मुरली, वंशी, शृंगी एवं मुरछंग आदि का वर्णन आया है।

अवधी पारंपरिक लोकगीतों एवं चैती में शहनाई का उल्लेख बार-बार मिलता है। मंगल का परिवेश प्रतिष्ठित करने वाला यह वाद्य इन जगहों पर मांगलिक विधि-विधानों के अवसर पर ही प्रयुक्त हुआ है। दक्षिण भारत के मंगल वाद्य 'नागस्वरम्' की तरह शहनाई, प्रभाती की मंगलध्वनि का संपूरक है।

शहनाई के इसी मंगलध्वनि के नायक बिस्मिल्ला खाँ साहब अस्सी बरस से सुर माँग रहे हैं। सच्चे सुर की नेमत। अस्सी बरस की पाँचों वक्त वाली नमाज़ इसी सुर को पाने की प्रार्थना में खर्च हो जाती है। लाखों सज़दे, इसी एक सच्चे सुर की इबादत में खुदा के आगे झुकते हैं। वे नमाज़ के बाद सज़दे में गिड़गिड़ाते हैं–'मेरे मालिक एक सुर बख्श दे। सुर में वह तासीर पैदा कर कि आँखों से सच्चे मोती की तरह अनगढ़ आँसू निकल आएँ।' उनको यकीन है, कभी खुदा यूँ ही उन पर मेहरबान होगा और अपनी झोली से सुर का फल निकालकर उनकी ओर उछालेगा, फिर कहेगा, ले जा अमीरुद्दीन इसको खा ले और कर ले अपनी मुराद पूरी।

अपने ऊहापोहों से बचने के लिए हम स्वयं किसी शरण, किसी गुफ़ा को खोजते हैं जहाँ अपनी दुश्चिंताओं, दुर्बलताओं को छोड़ सकें और वहाँ से फिर अपने लिए एक नया तिलिस्म गढ़ सकें। हिरन अपनी ही महक से परेशान पूरे जंगल में उस वरदान को खोजता है जिसकी

गमक उसी में समाई है। अस्सी बरस से बिस्मिल्ला खाँ यही सोचते आए हैं कि सातों सुरों को बरतने की तमीज़ उन्हें सलीके से अभी तक क्यों नहीं आई।

बिस्मिल्ला खाँ और शहनाई के साथ जिस एक मुस्लिम पर्व का नाम जुड़ा हुआ है, वह मुहर्रम है। मुहर्रम का महीना वह होता है जिसमें शिया मुसलमान हज़रत इमाम हुसैन एवं उनके कुछ वंशजों के प्रति अज़ादारी (शोक मनाना) मनाते हैं। पूरे दस दिनों का शोक। वे बताते हैं कि उनके खानदान का कोई व्यक्ति मुहर्रम के दिनों में न तो शहनाई बजाता है, न ही किसी संगीत के कार्यक्रम में शिरकत ही करता है। आठवीं तारीख उनके लिए खास महत्त्व की है। इस दिन खाँ साहब खड़े होकर शहनाई बजाते हैं व दालमंडी में फातमान के करीब आठ किलोमीटर की दूरी तक पैदल रोते हुए, नौहा बजाते जाते हैं। इस दिन कोई राग नहीं बजता। राग-रागिनियों की अदायगी का निषेध है इस दिन।

उनकी आँखें इमाम हुसैन और उनके परिवार के लोगों की शहादत में नम रहती हैं। अज़ादारी होती है। हज़ारों आँखें नम। हज़ार बरस की परंपरा पुनर्जीवित। मुहर्रम संपन्न होता है। एक बड़े कलाकार का सहज मानवीय रूप ऐसे अवसर पर आसानी से दिख जाता है।

मुहर्रम के गमज़दा माहौल से अलग, कभी-कभी सुकून के क्षणों में वे अपनी जवानी के दिनों को याद करते हैं। वे अपने रियाज़ को कम, उन दिनों के अपने जुनून को अधिक याद करते हैं। अपने अब्बाजान और उस्ताद को कम, पक्का महाल की कुलसुम हलवाइन की कचौड़ी वाली दुकान व गीताबाली और सुलोचना को ज्यादा याद करते हैं। कैसे सुलोचना उनकी पसंदीदा हीरोइन रही थीं, बड़ी रहस्यमय मुस्कराहट के साथ गालों पर चमक आ जाती है। खाँ साहब की अनुभवी आँखें और जल्दी ही खिस्स से हँस देने की ईश्वरीय कृपा आज भी बदस्तूर कायम है।

इसी बालसुलभ हँसी में कई यादें बंद हैं। वे जब उनका ज़िक्र करते हैं तब फिर उसी नैसर्गिक आनंद में आँखें चमक उठती हैं। अमीरुद्दीन तब सिर्फ़ चार साल का रहा होगा। छुपकर नाना को शहनाई बजाते हुए सुनता था, रियाज़ के बाद जब अपनी जगह से उठकर चले जाएँ तब जाकर ढेरों छोटी-बड़ी शहनाइयों की भीड़ से अपने नाना वाली शहनाई ढूँढ़ता और एक-एक शहनाई को फेंक कर खारिज़ करता जाता, सोचता–'लगता है मीठी वाली शहनाई दादा कहीं और रखते हैं।' जब मामू अलीबख्श खाँ (जो उस्ताद भी थे) शहनाई बजाते हुए सम पर आएँ, तब धड़ से एक पत्थर ज़मीन पर मारता था। सम पर आने की तमीज़ उन्हें बचपन में ही आ गई थी, मगर बच्चे को यह नहीं मालूम था कि दाद वाह करके दी जाती है, सिर हिलाकर दी जाती है, पत्थर पटक कर नहीं। और बचपन के समय फ़िल्मों के बुखार के बारे में तो पूछना ही क्या? उस समय थर्ड क्लास के लिए छः पैसे का टिकट मिलता था। अमीरुद्दीन दो पैसे मामू से, दो पैसे मौसी से और दो पैसे नानी से लेता था फिर घंटों लाइन में लगकर टिकट हासिल करता था।

इधर सुलोचना की नयी फ़िल्म सिनेमाहाल में आई और उधर अमीरुद्दीन अपनी कमाई लेकर चला फ़िल्म देखने जो बालाजी मंदिर पर रोज़ शहनाई बजाने से उसे मिलती थी। एक अठन्नी मेहनताना। उस पर यह शौक ज़बरदस्त कि सुलोचना की कोई नयी फ़िल्म न छूटे और कुलसुम की देशी घी वाली दुकान। वहाँ की संगीतमय कचौड़ी। संगीतमय कचौड़ी इस तरह क्योंकि कुलसुम जब कलकलाते घी में कचौड़ी डालती थी, उस समय छन्न से उठने वाली आवाज़ में उन्हें सारे आरोह-अवरोह दिख जाते थे। राम जाने, कितनों ने ऐसी कचौड़ी खाई होंगी। मगर इतना तय है कि अपने खाँ साहब रियाज़ी और स्वादी दोनों रहे हैं और इस बात में कोई शक नहीं कि दादा की मीठी शहनाई उनके हाथ लग चुकी है।

काशी में संगीत आयोजन की एक प्राचीन एवं अद्‌भुत परंपरा है। यह आयोजन पिछले कई बरसों से संकटमोचन मंदिर में होता आया है। यह मंदिर शहर के दक्षिण में लंका पर स्थित है व हनुमान जयंती के अवसर पर यहाँ पाँच दिनों तक शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय गायन-वादन की उत्कृष्ट सभा होती है। इसमें बिस्मिल्ला खाँ अवश्य रहते हैं। अपने मजहब के प्रति अत्यधिक समर्पित उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ की श्रद्धा काशी विश्वनाथ जी के प्रति भी अपार है। वे जब भी काशी से बाहर रहते हैं तब विश्वनाथ व बालाजी मंदिर की दिशा की ओर मुँह करके बैठते हैं, थोड़ी देर ही सही, मगर उसी ओर शहनाई का प्याला घुमा दिया जाता है और भीतर की आस्था रीड के माध्यम से बजती है। खाँ साहब की एक रीड 15 से 20 मिनट के अंदर गीली हो जाती है तब वे दूसरी रीड का इस्तेमाल कर लिया करते हैं।

अक्सर कहते हैं–'क्या करें मियाँ, ई काशी छोड़कर कहाँ जाएँ, गंगा मइया यहाँ, बाबा विश्वनाथ यहाँ, बालाजी का मंदिर यहाँ, यहाँ हमारे खानदान की कई पुश्तों ने शहनाई बजाई है, हमारे नाना तो वहीं बालाजी मंदिर में बड़े प्रतिष्ठित शहनाईवाज़ रह चुके हैं। अब हम क्या करें, मरते दम तक न यह शहनाई छूटेगी न काशी। जिस ज़मीन ने हमें तालीम दी, जहाँ से अदब पाई, वो कहाँ और मिलेगी? शहनाई और काशी से बढ़कर कोई जन्नत नहीं इस धरती पर हमारे लिए।'

काशी संस्कृति की पाठशाला है। शास्त्रों में आनंदकानन के नाम से प्रतिष्ठित। काशी में कलाधर हनुमान व नृत्य-विश्वनाथ हैं। काशी में बिस्मिल्ला खाँ हैं। काशी में हज़ारों सालों का इतिहास है जिसमें पंडित कंठे महाराज हैं, विद्याधरी हैं, बड़े रामदास जी हैं, मौजुद्दीन खाँ हैं व इन रसिकों से उपकृत होने वाला अपार जन-समूह है। यह एक अलग काशी है जिसकी अलग तहज़ीब है, अपनी बोली और अपने विशिष्ट लोग हैं। इनके अपने उत्सव हैं, अपना गम। अपना सेहरा-बन्ना और अपना नौहा। आप यहाँ संगीत को भक्ति से, भक्ति को किसी भी धर्म के कलाकार से, कजरी को चैती से, विश्वनाथ को विशालाक्षी से, बिस्मिल्ला खाँ को गंगाद्वार से अलग करके नहीं देख सकते।

अकसर समारोहों एवं उत्सवों में दुनिया कहती है ये बिस्मिल्ला खाँ हैं। बिस्मिल्ला खाँ का मतलब–बिस्मिल्ला खाँ की शहनाई। शहनाई का तात्पर्य-बिस्मिल्ला खाँ का हाथ। हाथ से आशय इतना भर कि बिस्मिल्ला खाँ की फूँक और शहनाई की जादुई आवाज़ का असर हमारे सिर चढ़कर बोलने लगता है। शहनाई में सरगम भरा है। खाँ साहब को ताल मालूम है, राग मालूम है। ऐसा नहीं कि बेताले जाएँगे। शहनाई में सात सुर लेकर निकल पड़े। शहनाई में परवरदिगार, गंगा मइया, उस्ताद की नसीहत लेकर उतर पड़े। दुनिया कहती–सुबहान अल्लाह, तिस पर बिस्मिल्ला खाँ कहते हैं–अलहमदुलिल्लाह। छोटी-छोटी उपज से मिलकर एक बड़ा आकार बनता है। शहनाई का करतब शुरू होने लगता है। बिस्मिल्ला खाँ का संसार सुरीला होना शुरू हुआ। फूँक में अजान की तासीर उतरती चली आई। देखते-देखते शहनाई डेढ़ सतक के साज से दो सतक का साज बन, साजों की कतार में सरताज हो गई। अमीरुद्दीन की शहनाई गूँज उठी। उस फकीर की दुआ लगी जिसने अमीरुद्दीन से कहा था–"बजा, बजा।"

किसी दिन एक शिष्या ने डरते-डरते खाँ साहब को टोका, "बाबा! आप यह क्या करते हैं, इतनी प्रतिष्ठा है आपकी। अब तो आपको भारतरत्न भी मिल चुका है, यह फटी तहमद न पहना करें। अच्छा नहीं लगता, जब भी कोई आता है आप इसी फटी तहमद में सबसे मिलते हैं।" खाँ साहब मुसकराए। लाड़ से भरकर बोले, "धत्! पगली ई भारतरत्न हमको शहनईया पे मिला है, लुंगिया पे नाहीं। तुम लोगों की तरह बनाव सिंगार देखते रहते, तो उमर ही बीत जाती, हो चुकती शहनाई।" तब क्या खाक रियाज़ हो पाता। ठीक है बिटिया, आगे से नहीं पहनेंगे, मगर

इतना बताए देते हैं कि मालिक से यही दुआ है, "फटा सुर न बख्शें। लुंगिया का क्या है, आज फटी है, तो कल सी जाएगी।"

सन् 2000 की बात है। पक्का महाल (काशी विश्वनाथ से लगा हुआ अधिकतम इलाका) से मलाई बरफ़ बेचने वाले जा चुके हैं। खाँ साहब को इसकी कमी खलती है। अब देशी घी में वह बात कहाँ और कहाँ वह कचौड़ी-जलेबी। खाँ साहब को बड़ी शिद्दत से कमी खलती है। अब संगतियों के लिए गायकों के मन में कोई आदर नहीं रहा। खाँ साहब अफसोस जताते हैं। अब घंटों रियाज़ को कौन पूछता है? हैरान हैं बिस्मिल्ला खाँ। कहाँ वह कजली, चैती और अदब का जमाना?

सचमुच हैरान करती है काशी–पक्का महाल से जैसे मलाई बरफ़ गया, संगीत, साहित्य और अदब की बहुत सारी परंपराएँ लुप्त हो गईं। एक सच्चे सुर साधक और सामाजिक की भाँति बिस्मिल्ला खाँ साहब को इन सबकी कमी खलती है। काशी में जिस तरह बाबा विश्वनाथ और बिस्मिला खाँ एक-दूसरे के पूरक रहे हैं, उसी तरह मुहर्रम-ताजिया और होली-अबीर, गुलाल की गंगा-जमुनी संस्कृति भी एक दूसरे के पूरक रहे हैं। अभी जल्दी ही बहुत कुछ इतिहास बन चुका है। अभी आगे बहुत कुछ इतिहास बन जाएगा। फिर भी कुछ बचा है जो सिर्फ़ काशी में है। काशी आज भी संगीत के स्वर पर जगती और उसी की थापों पर सोती है। काशी में मरण भी मंगल माना गया है। काशी आनंदकानन है। सबसे बड़ी बात है कि काशी के पास उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ जैसा लय और सुर की तमीज सिखाने वाला नायाब हीरा रहा है जो हमेशा से दो कौमों को एक होने व आपस में भाईचारे के साथ रहने की प्रेरणा देता रहा।

भारतरत्न से लेकर इस देश के ढेरों विश्वविद्यालयों की मानद उपाधियों से अलंकृत व संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार एवं पद्मविभूषण जैसे सम्मानों से नहीं, बल्कि अपनी अजेय संगीतयात्रा के लिए बिस्मिल्ला खाँ साहब भविष्य में हमेशा संगीत के नायक बने रहेंगे। नब्बे वर्ष की भरी-पूरी आयु में 21 अगस्त 2006 को संगीत रसिकों की हार्दिक सभा से विदा हुए खाँ साहब की सबसे बड़ी देन हमें यही है कि पूरे अस्सी बरस उन्होंने संगीत को संपूर्णता व एकाधिकार से सीखने की जिजीविषा को अपने भीतर जिंदा रखा।

प्रश्न-अभ्यास

1. शहनाई की दुनिया में डुमराँव को क्यों याद किया जाता है?
2. बिस्मिल्ला खाँ को शहनाई की मंगलध्वनि का नायक क्यों कहा गया है?
3. सुषिर-वाद्यों से क्या अभिप्राय है? शहनाई को 'सुषिर वाद्यों में शाह' की उपाधि क्यों दी गई होगी?
4. आशय स्पष्ट कीजिए–
   (क) 'फटा सुर न बख्शें। लुंगिया का क्या है, आज फटी है, तो कल सी जाएगी।'
   (ख) 'मेरे मालिक सुर बख्श दे। सुर में वह तासीर पैदा कर कि आँखों से सच्चे मोती की तरह अनगढ़ आँसू निकल आएँ।'
5. काशी में हो रहे कौन-से परिवर्तन बिस्मिल्ला खाँ को व्यथित करते थे?
6. पाठ में आए किन प्रसंगों के आधार पर आप कह सकते हैं कि–
   (क) बिस्मिल्ला खाँ मिली-जुली संस्कृति के प्रतीक थे।
   (ख) वे वास्तविक अर्थों में एक सच्चे इनसान थे।

7. बिस्मिल्ला खाँ के जीवन से जुड़ी उन घटनाओं और व्यक्तियों का उल्लेख करें जिन्होंने उनकी संगीत साधना को समृद्ध किया?

रचना और अभिव्यक्ति

8. बिस्मिल्ला खाँ के व्यक्तित्व की कौन-कौन सी विशेषताओं ने आपको प्रभावित किया?
9. मुहर्रम से बिस्मिल्ला खाँ के जुड़ाव को अपने शब्दों में लिखिए।
10. बिस्मिल्ला खाँ कला के अनन्य उपासक थे, तर्क सहित उत्तर दीजिए।

भाषा–अध्ययन

11. निम्नलिखित मिश्र वाक्यों के उपवाक्य छाँटकर भेद भी लिखिए–
    (क) यह ज़रूर है कि शहनाई और डुमराँव एक-दूसरे के लिए उपयोगी हैं।
    (ख) रीड अंदर से पोली होती है जिसके सहारे शहनाई को फूँका जाता है।
    (ग) रीड नरकट से बनाई जाती है जो डुमराँव में मुख्यतः सोन नदी के किनारों पर पाई जाती है।
    (घ) उनको यकीन है, कभी खुदा यूँ ही उन पर मेहरबान होगा।

(ङ) हिरन अपनी ही महक से परेशान पूरे जंगल में उस वरदान को खोजता है जिसकी गमक उसी में समाई है।

(च) खाँ साहब की सबसे बड़ी देन हमें यही है कि पूरे अस्सी बरस उन्होंने संगीत को संपूर्णता व एकाधिकार से सीखने की जिजीविषा को अपने भीतर जिंदा रखा।

12. निम्नलिखित वाक्यों को मिश्रित वाक्यों में बदलिए–

(क) इसी बालसुलभ हँसी में कई यादें बंद हैं।

(ख) काशी में संगीत आयोजन की एक प्राचीन एवं अद्‌भुत परंपरा है।

(ग) धत्! पगली ई भारतरत्न हमको शहनईया पे मिला है, लुंगिया पे नाहीं।

(घ) काशी का नायाब हीरा हमेशा से दो कौमों को एक होकर आपस में भाईचारे के साथ रहने की प्रेरणा देता रहा।

पाठेतर सक्रियता

- कल्पना कीजिए कि आपके विद्यालय में किसी प्रसिद्ध संगीतकार के शहनाई वादन का कार्यक्रम आयोजित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम की सूचना देते हुए बुलेटिन बोर्ड के लिए नोटिस बनाइए।
- आप अपने मनपसंद संगीतकार के बारे में एक अनुच्छेद लिखिए।
- हमारे साहित्य, कला, संगीत और नृत्य को समृद्ध करने में काशी (आज के वाराणसी) के योगदान पर चर्चा कीजिए।
- काशी का नाम आते ही हमारी आँखों के सामने काशी की बहुत-सी चीज़ें उभरने लगती हैं, वे कौन-कौन सी हैं?

शब्द-संपदा

ड्योढ़ी	–	दहलीज़
नौबतखाना	–	प्रवेश द्वार के ऊपर मंगल ध्वनि बजाने का स्थान
रियाज़	–	अभ्यास
मार्फ़त	–	द्वारा
शृंगी	–	सींग का बना वाद्ययंत्र
मुरछंग	–	एक प्रकार का लोक वाद्ययंत्र
नेमत	–	ईश्वर की देन, सुख, धन दौलत
सज़दा	–	माथा टेकना
इबादत	–	उपासना
तासीर	–	गुण, प्रभाव, असर
श्रुति	–	शब्दध्वनि
ऊहापोह	–	उलझन, अनिश्चितता

तिलिस्म	–	जादू
गमक	–	खुशबू, सुगंध
अज़ादारी	–	मातम करना, दुख मनाना
बदस्तूर	–	कायदे से, तरीके से
नैसर्गिक	–	स्वाभाविक, प्राकृतिक
दाद	–	शाबासी
तालीम	–	शिक्षा
अदब	–	कायदा, साहित्य
अलहमदुलिल्लाह	–	तमाम तारीफ़ ईश्वर के लिए
जिजीविषा	–	जीने की इच्छा
शिरकत	–	शामिल होना

यह भी जानें

सम – ताल का एक अंग, संगीत में वह स्थान जहाँ लय की समाप्ति और ताल का आरंभ होता है।

श्रुति – एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाते समय का अत्यंत सूक्ष्म स्वरांश

वाद्ययंत्र – हमारे देश में वाद्य यंत्रों की मुख्य चार श्रेणियाँ मानी जाती हैं–

तत-वितत – तार वाले वाद्य–वीणा, सितार, सारंगी, सरोद

सुषिर – फूँक कर बजाए जाने वाले वाद्य–बाँसुरी, शहनाई, नागस्वरम्, बीन

घनवाद्य – आघात से बजाए जाने वाले धातु वाद्य–झाँझ, मंजीरा, घुँघरू

अवनद्ध – चमड़े से मढ़े वाद्य–तबला, ढोलक, मृदंग आदि।

चैती

चढ़ल चइत चित लागे ना रामा
बाबा के भवनवा
बीर बमनवा सगुन बिचारो
कब होइहैं पिया से मिलनवा हो रामा
चढ़ल चइत चित लागे ना रामा

ठुमरी

बाजुबंद खुल-खुल जाए
जादू की पुड़िया भर-भर मारी
हे! बाजुबंद खुल-खुल जाए

टप्पा

बागाँ विच आया करो
बागाँ विच आया करो
मक्खियाँ तों डर लगदा
गुड़ ज़रा कम खाया करो।

दादरा

तड़प तड़प जिया जाए
साँवरिया बिना
गोकुल छाड़े मथुरा में छाए
किन संग प्रीत लगाए
तड़प तड़प जिया जाए

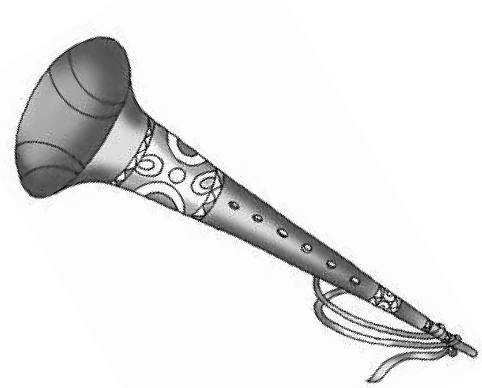

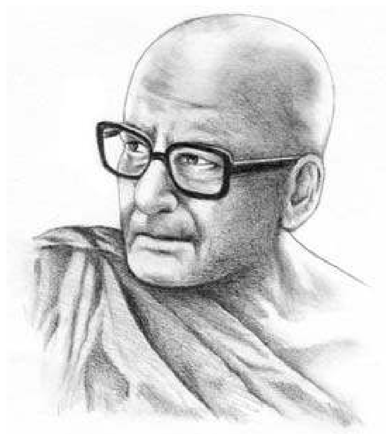

17

भदंत आनंद कौसल्यायन

भदंत **आनंद कौसल्यायन** का जन्म सन् 1905 में पंजाब के अंबाला ज़िले के सोहाना गाँव में हुआ। उनके बचपन का नाम हरनाम दास था। उन्होंने लाहौर के नेशनल कॉलिज से बी.ए. किया। अनन्य हिंदी सेवी कौसल्यायन जी बौद्ध भिक्षु थे और उन्होंने देश-विदेश की काफ़ी यात्राएँ कीं तथा बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। वे गांधी जी के साथ लंबे अर्से तक वर्धा में रहे। सन् 1988 में उनका निधन हो गया।

भदंत आनंद कौसल्यायन की 20 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं। जिनमें **भिक्षु के पत्र**, **जो भूल ना सका**, **आह! ऐसी दरिद्रता, बहानेबाजी, यदि बाबा ना होते**, **रेल का टिकट**, **कहाँ क्या देखा** आदि प्रमुख हैं। बौद्धधर्म-दर्शन संबंधित उनके मौलिक और अनूदित अनेक ग्रंथ हैं जिनमें जातक कथाओं का अनुवाद विशेष उल्लेखनीय है।

देश-विदेश के भ्रमण ने भदंत जी को अनुभव की व्यापकता प्रदान की और उनकी सृजनात्मकता को समृद्ध किया। उन्होंने हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग और राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा के माध्यम से देश-विदेश में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वे गांधी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से विशेष प्रभावित थे। सरल, सहज बोलचाल की भाषा में लिखे उनके निबंध, संस्मरण और यात्रा वृत्तांत काफ़ी चर्चित रहे हैं।

***संस्कृति** निबंध हमें सभ्यता और संस्कृति से जुड़े अनेक जटिल प्रश्नों से टकराने की प्रेरणा देता है। इस निबंध में भदंत आनंद कौसल्यायन जी ने अनेक उदाहरण देकर यह बताने का प्रयास किया है कि सभ्यता और संस्कृति किसे कहते हैं, दोनों एक ही वस्तु हैं अथवा अलग-अलग। वे सभ्यता को संस्कृति का परिणाम मानते हुए कहते हैं कि मानव संस्कृति अविभाज्य वस्तु है। उन्हें संस्कृति का बँटवारा करने वाले लोगों पर आश्चर्य होता है और दुख भी। उनकी दृष्टि में जो मनुष्य के लिए कल्याणकारी नहीं है, वह न सभ्यता है और न संस्कृति।*

संस्कृति

जो शब्द सबसे कम समझ में आते हैं और जिनका उपयोग होता है सबसे अधिक; ऐसे दो शब्द हैं सभ्यता और संस्कृति।

इन दो शब्दों के साथ जब अनेक विशेषण लग जाते हैं, उदाहरण के लिए जैसे भौतिक-सभ्यता और आध्यात्मिक-सभ्यता, तब दोनों शब्दों का जो थोड़ा बहुत अर्थ समझ में आया रहता है, वह भी गलत-सलत हो जाता है। क्या यह एक ही चीज़ है अथवा दो वस्तुएँ? यदि दो हैं तो दोनों में क्या अंतर है? हम इसे अपने तरीके पर समझने की कोशिश करें।

कल्पना कीजिए उस समय की जब मानव समाज का अग्नि देवता से साक्षात नहीं हुआ था। आज तो घर-घर चूल्हा जलता है। जिस आदमी ने पहले पहल आग का आविष्कार किया होगा, वह कितना बड़ा आविष्कर्ता होगा!

अथवा कल्पना कीजिए उस समय की जब मानव को सुई-धागे का परिचय न था, जिस मनुष्य के दिमाग में पहले-पहल बात आई होगी कि लोहे के एक टुकड़े को घिसकर उसके एक सिरे को छेदकर और छेद में धागा पिरोकर कपड़े के दो टुकड़े एक साथ जोड़े जा सकते हैं, वह भी कितना बड़ा आविष्कर्ता रहा होगा!

इन्हीं दो उदाहरणों पर विचार कीजिए; पहले उदाहरण में एक चीज़ है किसी व्यक्ति विशेष की आग का आविष्कार कर सकने की शक्ति और दूसरी चीज़ है आग का आविष्कार। इसी प्रकार दूसरे सुई-धागे के उदाहरण में एक चीज़ है सुई-धागे का आविष्कार कर सकने की शक्ति और दूसरी चीज़ है सुई-धागे का आविष्कार।

जिस योग्यता, प्रवृत्ति अथवा प्रेरणा के बल पर आग का व

सुई-धागे का आविष्कार हुआ, वह है व्यक्ति विशेष की संस्कृति; और उस संस्कृति द्वारा जो आविष्कार हुआ, जो चीज़ उसने अपने तथा दूसरों के लिए आविष्कृत की, उसका नाम है सभ्यता।

जिस व्यक्ति में पहली चीज़, जितनी अधिक व जैसी परिष्कृत मात्रा में होगी, वह व्यक्ति उतना ही अधिक व वैसा ही परिष्कृत आविष्कर्ता होगा।

एक संस्कृत व्यक्ति किसी नयी चीज़ की खोज करता है; किंतु उसकी संतान को वह अपने पूर्वज से अनायास ही प्राप्त हो जाती है। जिस व्यक्ति की बुद्धि ने अथवा उसके विवेक ने किसी भी नए तथ्य का दर्शन किया, वह व्यक्ति ही वास्तविक संस्कृत व्यक्ति है और उसकी संतान जिसे अपने पूर्वज से वह वस्तु अनायास ही प्राप्त हो गई है, वह अपने पूर्वज की भाँति सभ्य भले ही बन जाए, संस्कृत नहीं कहला सकता। एक आधुनिक उदाहरण लें। न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का आविष्कार किया। वह संस्कृत मानव था। आज के युग का भौतिक विज्ञान का विद्यार्थी न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण से तो परिचित है ही; लेकिन उसके साथ उसे और भी अनेक बातों का ज्ञान प्राप्त है जिनसे शायद न्यूटन अपरिचित ही रहा। ऐसा होने पर भी हम आज के भौतिक विज्ञान के विद्यार्थी को न्यूटन की अपेक्षा अधिक सभ्य भले ही कह सके; पर न्यूटन जितना संस्कृत नहीं कह सकते।

आग के आविष्कार में कदाचित पेट की ज्वाला की प्रेरणा एक कारण रही। सुई-धागे के आविष्कार में शायद शीतोष्ण से बचने तथा शरीर को सजाने की प्रवृत्ति का विशेष हाथ रहा। अब कल्पना कीजिए उस आदमी की जिसका पेट भरा है, जिसका तन ढँका है, लेकिन जब वह खुले आकाश के नीचे सोया हुआ रात के जगमगाते तारों को देखता है, तो उसको केवल इसलिए नींद नहीं आती क्योंकि वह यह जानने के लिए परेशान है कि आखिर यह मोती भरा थाल क्या है? पेट भरने और तन ढँकने की इच्छा मनुष्य की संस्कृति की जननी नहीं है। पेट भरा और तन ढँका होने पर भी ऐसा मानव जो वास्तव में संस्कृत है, निठल्ला नहीं बैठ सकता। हमारी सभ्यता का एक बड़ा अंश हमें ऐसे संस्कृत आदमियों से ही मिला है, जिनकी चेतना पर स्थूल भौतिक कारणों का प्रभाव प्रधान रहा है, किंतु उसका कुछ हिस्सा हमें मनीषियों से भी मिला है जिन्होंने तथ्य-विशेष को किसी भौतिक प्रेरणा के वशीभूत होकर नहीं, बल्कि उनके अपने अंदर की सहज संस्कृति के ही कारण प्राप्त किया है। रात के तारों को देखकर न सो सकने वाला मनीषी हमारे आज के ज्ञान का ऐसा ही प्रथम पुरस्कर्ता था।

भौतिक प्रेरणा, ज्ञानेप्सा—क्या ये दो ही मानव संस्कृति के माता-पिता हैं? दूसरे के मुँह में कौर डालने के लिए जो अपने मुँह का कौर छोड़ देता है, उसको यह बात क्यों और कैसे सूझती है? रोगी बच्चे को सारी रात गोद में लिए जो माता बैठी रहती है, वह आखिर ऐसा

क्यों करती है? सुनते हैं कि रूस का भाग्यविधाता लेनिन अपनी डैस्क में रखे हुए डबल रोटी के सूखे टुकड़े स्वयं न खाकर दूसरों को खिला दिया करता था। वह आखिर ऐसा क्यों करता था? संसार के मज़दूरों को सुखी देखने का स्वप्न देखते हुए कार्ल मार्क्स ने अपना सारा जीवन दुख में बिता दिया। और इन सबसे बढ़कर आज नहीं, आज से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व सिद्धार्थ ने अपना घर केवल इसलिए त्याग दिया कि किसी तरह तृष्णा के वशीभूत लड़ती-कटती मानवता सुख से रह सके।

हमारी समझ में मानव संस्कृति की जो योग्यता आग व सुई-धागे का आविष्कार कराती है; वह भी संस्कृति है जो योग्यता तारों की जानकारी कराती है, वह भी है; और जो योग्यता किसी महामानव से सर्वस्व त्याग कराती है, वह भी संस्कृति है।

और सभ्यता? सभ्यता है संस्कृति का परिणाम। हमारे खाने-पीने के तरीके, हमारे ओढ़ने पहनने के तरीके, हमारे गमना-गमन के साधन, हमारे परस्पर कट मरने के तरीके; सब हमारी सभ्यता हैं। मानव की जो योग्यता उससे आत्म-विनाश के साधनों का आविष्कार कराती है, हम उसे उसकी संस्कृति कहें या असंस्कृति? और जिन साधनों के बल पर वह दिन-रात आत्म-विनाश में जुटा हुआ है, उन्हें हम उसकी सभ्यता समझें या असभ्यता? संस्कृति का यदि कल्याण की भावना से नाता टूट जाएगा तो वह असंस्कृति होकर ही रहेगी और ऐसी संस्कृति का अवश्यंभावी परिणाम असभ्यता के अतिरिक्त दूसरा क्या होगा?

संस्कृति के नाम से जिस कूड़े-करकट के ढेर का बोध होता है, वह न संस्कृति है न रक्षणीय वस्तु। क्षण-क्षण परिवर्तन होने वाले संसार में किसी भी चीज़ को पकड़कर बैठा नहीं जा सकता। मानव ने जब-जब प्रज्ञा और मैत्री भाव से किसी नए तथ्य का दर्शन किया है तो उसने कोई वस्तु नहीं देखी है, जिसकी रक्षा के लिए दलबंदियों की ज़रूरत है।

मानव संस्कृति एक अविभाज्य वस्तु है और उसमें जितना अंश कल्याण का है, वह अकल्याणकर की अपेक्षा श्रेष्ठ ही नहीं स्थायी भी है।

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखक की दृष्टि में 'सभ्यता' और 'संस्कृति' की सही समझ अब तक क्यों नहीं बन पाई है?
2. आग की खोज एक बहुत बड़ी खोज क्यों मानी जाती है? इस खोज के पीछे रही प्रेरणा के मुख्य स्रोत क्या रहे होंगे?

3. वास्तविक अर्थों में 'संस्कृत व्यक्ति' किसे कहा जा सकता है?
4. न्यूटन को संस्कृत मानव कहने के पीछे कौन से तर्क दिए गए हैं? न्यूटन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों एवं ज्ञान की कई दूसरी बारीकियों को जानने वाले लोग भी न्यूटन की तरह संस्कृत नहीं कहला सकते, क्यों?
5. किन महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सुई-धागे का आविष्कार हुआ होगा?
6. "मानव संस्कृति एक अविभाज्य वस्तु है।" किन्हीं दो प्रसंगों का उल्लेख कीजिए जब–
   (क) मानव संस्कृति को विभाजित करने की चेष्टाएँ की गईं।
   (ख) जब मानव संस्कृति ने अपने एक होने का प्रमाण दिया।
7. आशय स्पष्ट कीजिए–
   (क) मानव की जो योग्यता उससे आत्म-विनाश के साधनों का आविष्कार कराती है, हम उसे उसकी संस्कृति कहें या असंस्कृति?

रचना और अभिव्यक्ति

8. लेखक ने अपने दृष्टिकोण से सभ्यता और संस्कृति की एक परिभाषा दी है। आप सभ्यता और संस्कृति के बारे में क्या सोचते हैं, लिखिए।

भाषा-अध्ययन

9. निम्नलिखित सामासिक पदों का विग्रह करके समास का भेद भी लिखिए–

गलत-सलत	आत्म-विनाश
महामानव	पददलित
हिंदू-मुसलिम	यथोचित
सप्तर्षि	सुलोचना

पाठेतर सक्रियता

- 'स्थूल भौतिक कारण ही आविष्कारों का आधार नहीं है।' इस विषय पर वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन कीजिए।
- उन खोजों और आविष्कारों की सूची तैयार कीजिए जो आपकी नज़र में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं?

शब्द-संपदा

आध्यात्मिक	–	परमात्मा या आत्मा से संबंध रखने वाला; मन से संबंध रखने वाला
साक्षात	–	आँखों के सामने, प्रत्यक्ष, सीधे
आविष्कर्ता	–	आविष्कार करने वाला
परिष्कृत	–	जिसका परिष्कार किया गया हो, शुद्ध किया हुआ, साफ़ किया हुआ

अनायास – बिना प्रयास के, आसानी से
कदाचित – कभी, शायद
शीतोष्ण – ठंडा और गरम
निठल्ला – बेकार, अकर्मण्य, बिना काम धंधे का, खाली बैठा हुआ
मनीषियों – विद्वानों, विचारशीलों
वशीभूत – वश में होना, अधीन
तृष्णा – प्यास, लोभ
अवश्यंभावी – जिसका होना निश्चित हो
अविभाज्य – जो बाँटा न जा सके